चन्दामामा
फरवरी १९७८

आनंद द्वीप!
कॅड्बरिज़
जेम्स
Cadbury's
MILK CHOCOLATE
GEMS
चॉकलेट से भरे रंगीन कॅड्बरिज़ जेम्स
CHAITRA-C-105 HIN

चन्दामामा

फ़रवरी १९७८

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI. CHANDAMAMA is published monthly and distributed in U.S.A. by Chandamama Distributors, West Chester PA 19380. Subscription 1 year $ 6-50. Second Class Postage paid at West Chester, PA.

चन्दामामा
संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी
इस महीने की बेताल कथा "असफल योजना" है।
नारी तथा पुरुष के बीच जो प्रेम होता है, वह केवल उन्हीं से संबंधित होता है। लेकिन मानव को समाज के साथ बांधनेवाले अनेक बंधन होते हैं। इस कारण मानव को उन बंधनों से संबंधित सभी नियमों का पालन करना होता है। इसलिए प्रेम के वास्ते उन बंधनों को त्यागनेवाला व्यक्ति उत्तम मानव नहीं कहलाता। इस सत्य को पहचानकर मणिमेखला ने उसका पालन भी किया है। इसे न पहचाननेवाले विजयसिंह ने मणिमेखला से एक अच्छा सबक़ सीख लिया है।
वर्ष : ३०
फ़रवरी १९७८
अंक : ५
एक प्रति : १-२५ :: वार्षिक चन्दा : १५-००
CHANDAMAMA PUBLICATION
CHITRA

संश्रुत्य शैब्य श्च्वे नाय
स्वां तनुं जगतीपतिः
प्रदाय पक्षिणे, राजन,
जगाम गति मुत्तमाम्   ॥ १ ॥

[राजन, शैब्य नामक राजा ने (वचन देने के कारण) अपने शरीर को बाज को समर्पित कर उत्तम लोक की प्राप्ति की ।]

तथा ह्यलर्क स्तेजस्वी
ब्राह्मणे वेद पारगे
याचमाने स्वकी नेत्रो
उद्धृत्य सुमना ददौ   ॥ २ ॥

[इसी प्रकार अलर्क नामक एक महानुभाव ने वेदशास्त्री के याचना करने पर अपनी आँखें निकालकर दे दीं ।]

सरितां तु पति स्स्वल्पां
मर्यादां सत्य मन्वितः
सत्यानुरोधा त्समये
स्वां वेलां नाति वर्तते   ॥ ३ ॥

[समस्त नदियों के अधिपति समुद्र ने वचन देने के कारण किसी स्थिति में क्षुद्र वेला (समुद्र के किनारे) को पार नहीं किया है ।]

सत्य वचन

[५५]

क्रूराक्ष के द्वारा राजा शिवि का वृत्तांत सुनाने पर अरिमर्दन ने दीप्ताक्ष की राय मांगी। दीप्ताक्ष ने कहा:–"मेरा ख्याल है कि हृदय परिवर्तन पानेवाले हमारे शत्रु कौए की सहायता लेना उचित ही होगा। पुराने जमाने में एक वृद्ध की जवान पत्नी की कहानी के अनुसार चोर के द्वारा उपकार ही हुआ है।"

"वह कैसी कहानी है?" अरिमर्दन ने पूछा। इस पर दीप्ताक्ष ने यों सुनाया:

प्राचीन काल में कामातुर नामक एक वृद्ध व्यापारी था। उसके साथ चालीस वर्ष तक गृहस्थी चलानेवाली पत्नी के देहांत हो जाने पर उसने दूसरे ही दिन सोलह साल की युवती के साथ दूसरी शादी की। उसने उस युवती के माता-पिता को काफ़ी धन दिया। मगर उस युवती का मन विकल हो गया। वह अपने वृद्ध पति के साथ प्यार न कर सकी। उसके आलिंगन को स्वीकार न कर पाई।

एक दिन रात को पति-पत्नी सोये हुए थे। वह रोज की भांति अपने पति की ओर पीठ करके युवती लेटी हुई थी। उस वक़्त एक पहलवान जैसे चोर ने उस घर में प्रवेश किया। उसे देख वह युवती डर गई और उसने अपने पति के साथ कसकर आलिंगन किया। अचानक घटी इस घटना से व्यापारी पुलकित हो उठा और उसे आश्चर्य भी हुआ।

व्यापारी ने सोचा–"आज तक तो कभी ऐसी घटना न घटी, पर आज क्यों इसने मेरे साथ ऐसा आलिंगन किया है?" यों सोचते उसने घर के चारों तरफ़ अपनी

नज़र डाली, उसे कोने में खड़ा हुआ एक डाकू दिखाई दिया।

व्यापारी ने डाकू से कहा–"बेटा, आज तक मेरे स्पर्श मात्र से घृणा करनेवाली मेरी पत्नी ने आज तुम्हारी कृपा से मेरे साथ आलिंगन किया है। इसलिए तुम जो भी संपत्ति चाहते हो, ले जाओ।"

व्यापारी की ये बातें सुनने पर चोर का मन पिघल गया। उसने कहा–"महाशय, मैं आप के घर से एक तिनका भी उठा नहीं ले जाऊँगा। मेरे जरिये आप का उपकार हुआ है, इसलिए मुझे बड़ी खुशी हो रही है। मैं फिर उसी दिन आप के घर आऊँगा जिस दिन आप की पत्नी आप के साथ यों आलिंगन न करेगी।"

यह कहानी सुनने के बाद अरिमर्दन ने वक्रनास की राय माँगी। उसने बताया: "राजन, इस कौए की हत्या नहीं करनी चाहिए। यह भले ही हमारा शत्रु क्यों न हो, पर जो अपने नेता से असंतुष्ट है, उसकी सहायता हम स्वीकार कर सकते हैं। ब्राह्मण, चोर और राक्षस की कहानी का वृत्तांत यही बताता है न?"

"वह कैसी कहानी है?" अरिमर्दन के पूछने पर वक्रनास ने यों सुनाया: एक गाँव में एक गरीब ब्राह्मण था। वह याचना करते अपने दिन बिताया करता था। धूप, सर्दी, बरसात और भूख से वह सूखकर कांटा हो गया था।

एक दिन एक धनी ने अपने पिता की मृत्यु पर उसे उत्तम लोकों की प्राप्ति के लिए उस ब्राह्मण को गाय के दो बछड़े दान में दिये। ब्राह्मण ने उन्हें खूब चराया। कालांतर में वे दो अच्छी गायें बन गईं।

एक चोर ने उन बलिष्ट गायों को देखा और उन्हें हड़पने का निश्चय किया। वह ब्राह्मण के घर पहुँचने ही जा रहा था कि उसे एक राक्षसी दिखाई दी। राक्षसी को देख चोर डर गया। उसने पूछा–"तुम कौन हो? यहाँ क्यों हो?"

"मैं राक्षसी हूँ। इस घर में निवास करनेवाले ब्राह्मण को खाने जा रही हूँ। लेकिन तुम कौन हो?" राक्षसी ने पूछा।

चोर ने बताया–"मैं एक चोर हूँ। ब्राह्मण की गायों को चुराने जा रहा हूँ।"

इसके बाद दोनों मिलकर ब्राह्मण के घर पहुँचे। एक जगह छिपकर अपने कार्य संपन्न करने के मौक़े का इंतज़ार करने लगे। ब्राह्मण लेटकर ज्यों हीं सो गया, त्यों ही राक्षसी उसे खाने के ख्याल से उठ खड़ी हो गई। इसे देख चोर ने राक्षसी से कहा–"सुनो, तुम ब्राह्मण को खाकर हल्ला मचाओगी, इसलिए इसके पहले ही मुझे गायों को हांक ले जाने दो।"

"नहीं, मुझे पहले ब्राह्मण को खाने दो। तुम जब गायों को चुराने जाओगे, तब उनके रंभाने पर मेरा काम बिगड़ जाएगा।" राक्षसी ने कहा।

दोनों इस प्रकार वाद-विवाद करते ज़ोर से चिल्लाने लगे। वे लड़ने को भी तैयार हो गये। यह हल्ला सुनकर ब्राह्मण जाग उठा।

"हे ब्राह्मण, सुनो, यह राक्षसी तुम को खाना चाहती है!" चोर ने कहा।

"सुनो, ब्राह्मण! यह चोर तुम्हारी गायों की चोरी करना चाहता है।" राक्षसी ने शिकायत की।

फिर क्या था, ब्राह्मण ने मंत्र पढ़ा तो राक्षसी भाग गई, इसके बाद जब चिल्लाने लगा, तब चोर भी डर के मारे भाग गया।

संसार के आश्चर्य :

१९३. प्राचीन षांग की शिल्प कला

गत दस वर्षों की खुदाई के परिणाम स्वरूप चीन में ई. पू. १६–१४ शताब्दियों के मध्यकाल में षांग दास्य समाज की संस्कृति कैसे फैली थी, प्रकट हो गई है। खासकर कांस्य पात्रों की कारीगरी अत्यंत शीर्ष श्रेणी को पहुँच गई थी। इनमें पान-पात्र, रसोई के बर्तन तथा पूजा के पात्र भी हैं। अधिकांश पात्रों पर उसके मालिक याने गुलाम के मालिक का नाम खुदा हुआ है। इस चित्र में 'टॆंग' श्रेणी का पात्र है। इसकी ऊँचाई १०० सेंटी मीटर है। वज़न ८२.४ किलो है।
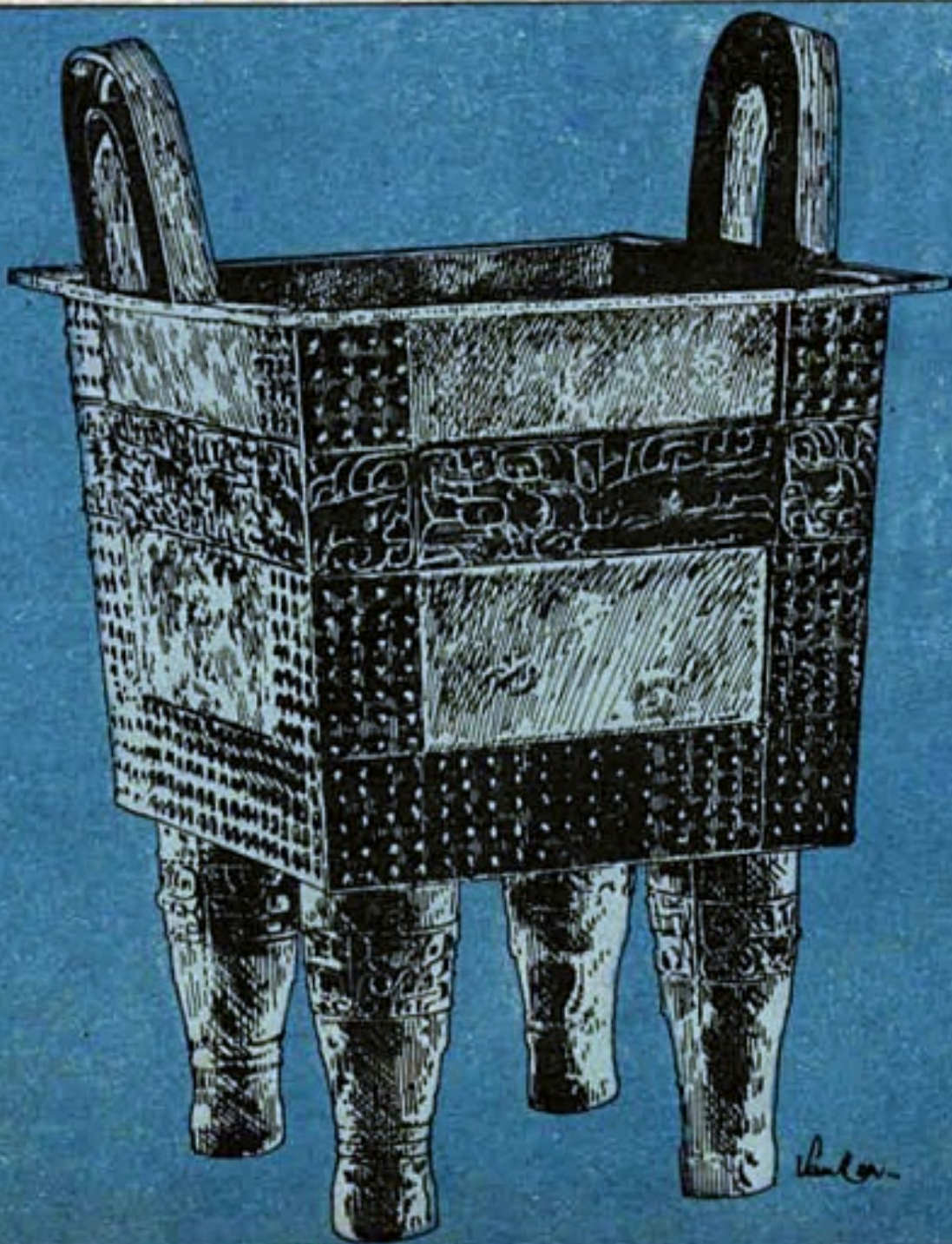
[२५]

[आसमान में उड़नेवाले हंसों के रथ से फिसलकर माया सरोवरेश्वर जंगल में एक स्थान पर नर भक्षी जाति के द्वारा गरम करनेवाले जल की हंडी में जा गिरा। उसने अपने साथ रथ पर आये हुए लोगों का वृत्तांत बताया। उनकी खोज में सब चल पड़े, तभी उन्हें सिद्ध साधक की चिल्लाहट सुनाई दी। बाद–]

सिद्ध साधक की 'जय महा काल की!' यह चिल्लाहट सुनकर माया सरोवरेश्वर हठात् रुक गया। चारों ओर नज़र दौड़ाकर कांपने लगा। इसे देख पुजारी गणाचारी विस्मय में आ गया। उसके साथ आये नरभक्षी जाति के चार अनुचर चिल्लाहट की दिशा में आगे बढ़े।

उसी समय माया सरोवरेश्वर संभलकर गणाचारी से बोला–"तुम अपने अनुचरों को वापस बुला लो, इसी में उनकी ख़ैरियत है। वह चिल्लाहट महाकाल के एक भक्त की है। उनकी मंत्र-शक्तियों के सामने तुम्हारे भाले काम दे न पायेंगे।"

ये शब्द सुनकर गणाचारी ठठाकर हँस पड़ा और बोला–"मानवभक्षी लोग ऐसे मंत्र-तंत्रों से भय नहीं खाते। जंगली देवता की कृपा से हमारा आहार बनने के लिए एक और व्यक्ति मिलने जा रहा है!"

"अबे, सुनो! हम लोगों को यहाँ से भाग जाना उचित होगा! तुम में से एक तुरंत सरदार शेरसिंह के पास दौड़ जाओ और उन्हें इस यम दूत का समाचार सुना दो। अगर हम इसके हाथ में पड़ गये तो हमारी जाति का सर्वनाश हो जाएगा। हमें इन लोगों से बचने का कोई न कोई उपाय तत्काल सोचना होगा। विलंब होने से हमारी हानि होने की पूरी संभावना है।" यों सचेत कर बूढ़ा गणाचारी भागने के लिए वापस मुड़ गया।

सिद्ध साधक पुनः एक बार चिल्ला उठा–"महाकाल की जय!" भागने की कोशिश करनेवाले नर भक्षी लोगों के सामने पहुँचकर ललकारा–"तुम लोगों ने यहाँ से हिलने की कोशिश की तो अपने नर वानर का आहार बना डालूँगा। बताओ, तुम लोग कौन हो? यहाँ पर क्या कर रहे हो? कांचनमाला नामक राजकुमारी हंसों के रथ पर से इसी प्रदेश में गिर गई है। क्या तुम में से किसी ने उन्हें देख लिया है?"

गणाचारी की बात पूरी न हो पाई थी, तभी भाले ऊपर उठाये आगे बढ़नेवाले चार नरभक्षी लोग चीखते-चिल्लाते बेतहाशा दौड़कर गणाचारी के पास लौट आये और कंपित स्वर में बोले–"पुजारीजी, हम लोगों की जानें खतरे में हैं, हाथी जैसे नर वानर पर एक यमदूत सवार हो चिल्लाते इसी ओर आ रहा है।"

इस बार माया सरोवरेश्वर के साथ गणाचारी भी थर थर कांप उठा। थोड़ी दूर पर पेड़ों की ओट में से शूल उठाये नर वानर को तेजी के साथ दौड़ाते उनकी ओर बढ़नेवाला सिद्ध साधक उन्हें दिखाई दिया।

सिद्ध साधक की बातें गणाचारी या उसके अनुचरों की समझ में न आईं। गणाचारी किसी बात की याद करने की कोशिश में सर उठाकर एक पेड़ की डालों की ओट में छिपकर भागने की सोचनेवाले

माया सरोवरेश्वर को साधक को इशारे द्वारा दिखाते बोला–" हमारे जंगली देवता ने हमारे आहार के रूप में एक आदमी को भेजने की बड़ी कृपा की है, वही यह व्यक्ति है! शायद राजकुमारी की बात यह जानता हो! आप कृपया उसी से पूछकर देखिए।"

तब तक सिद्ध साधक नर भक्षी लोगों को भागने से रोकने के प्रयत्न में था, इसलिए उसकी दृष्टि माया सरोवरेश्वर पर न पड़ी थी। अब उसे देख डांटकर बोला–"अबे, खोपड़ी जैसे किरीटवाले तुम्हीं क्या माया सरोवरेश्वर हो? मैंने सुना था कि बड़े ही शक्तिशाली हो, पर देखने में कायर-से लगते हो! यदि चोर की भांति तुमने भागने की कोशिश की तो शूल में चुभोकर तुम को जमीन में गाड़ दूंगा; खबरदार!"

सिद्ध साधक की बातें सुन माया सरोवरेश्वर गुस्से में आया, उस पर आक्रमण करने के ख्याल से तलवार की मूठ पर हाथ डालकर खींचने को हुआ, पुनः संभलकर घृणापूर्ण स्वर में बोला– "तुम्हारी शकल-सूरत और बोली को देखने से तुम एक कापालिक जैसे लगते हो, लेकिन हमें इससे तुम्हारे नाम व गाँव का पता नहीं चल रहा है। मैं तुम जैसे कमीनों पर तलवार नहीं चलाता। अपना यह बकवास बंद कर तुम अपने रास्ते चले जाओ।"

"मैं सिद्ध साधक हूँ। महा काल का भक्त हूँ। तुम्हारी बराबरी करनेवाला शत्रु मेरा सेवक बना हुआ है। मैंने उसको राजकुमारी की खोज में भेज दिया है। क्या तुम उसके साथ लड़ना पसंद करोगे? क्या मैं उसे वापस बुलवा लूं?" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने उच्च स्वर में पुकारा–"अरे जलवृक, तुम कहाँ हो? तुम्हारी जाति का दुश्मन माया सरोवरेश्वर यहाँ पर है। तुम इसकी ताक़त की जाँच कर लो।"

इसके उत्तर में साधक का सेवक जलवृक राक्षस दूर से चिल्लाकर कंटीली झाड़ियों के ऊपर उछलते, ताल ठोंकते बोला--"वह दुष्ट माया सरोवरेश्वर कहाँ? मैं अपने पत्थरवाले गदे से उसे चकना चूर कर देता हूँ। कृपया मेरे पहुँचने तक उसे रोक रखिए!"

जलवृक राक्षस इस तरह तेजी के साथ आगे बढ़ रहा था, तभी एक सालवृक्ष की ओट से मकरकेतु ने अपने जलग्रह को आगे बढ़ाकर जलवृक के रास्ते को रोका। जलग्रह भीकर रूप से घींकार करके सूंड फैलाकर राक्षस को पकड़ने को हुआ। जलवृक उछलकर एक ही छलांग में हट गया। बिजली की तेजी से पीछे हटकर उसने जलग्रह के सर पर अपने गदे का प्रहार किया। मकरकेतु भीकर गर्जन करके धमकी के स्वर में बोला–"अरे, जलवृक राक्षस! मैं तुम्हें अभी यमलोक में भेज देता हूँ।" यों सचेत करके उसके कंठ पर छुरी भोंकने को हुआ, मगर छुरी का निशाना चूककर राक्षस के कंधे को चीर गया।

नर वानर पर बैठे इस दृश्य को देखनेवाला सिद्ध साधक अपने सेवक के घायल होते ही आवेश में आकर चिल्ला उठा–"चाहे बाद को जयशील मुझे कुछ भी कहे, मैं अभी इस माया सरोवरेश्वर और मकरकेतु का काम तमाम कर देता हूँ।" इन शब्दों के साथ नर वानर को हांक दिया।

उसके दूसरे ही क्षण चारों तरफ से सीटियों तथा तालियाँ बजाने की आवाज़ सुनाई दी। सिद्ध साधक ने विस्मय में आकर सिर घुमाकर देखा। तब तक चारों तरफ़ के पेड़ों तथा झाड़ियों के पीछे अनेक नर भक्षी पहुँच गये थे। उनमें से सरदार शेरसिंह अपने कंधे पर भाला लिये आगे बढ़ते हुए पुजारी गणाचारी से बोला-"गणाचारी, यह आश्चर्य की बात नहीं है कि एक साथ हमारे जंगली देवता ने इतने लोगों को हमारे आहार के रूप में भेजा है? ओह! हमारे भगवान तो भक्तों के कल्पवृक्ष हैं न?"

सिद्ध साधक ने सरदार शेरसिंह की बातें सुनीं, साथ ही उसके अनुचर उल्लास पूर्वक बढ़े आ रहे थे, उसने सोचा कि अब अपने शत्रुओं के साथ उसके प्राण भी खतरे में पड़नेवाले हैं, यों सोचकर हठात् उसने अपने नर वानर का मकरकेतु के निकट दौड़ाया।

मकरकेतु ने घायल जलग्रह के सिर पर हाथ रखा, थोड़ी देर तक स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ फेरता रहा! उसके उठ खड़े होते ही उस पर सवार होने को हुआ, पुनः थोड़ी दूर पर स्थित माया सरोवरेश्वर से बोला-"माया सरोवरेश्वर! कृपया आप इस जलग्रह पर सवार हो जाइए! ये सिद्ध साधक स्वभाव से आवेशशील हैं, मगर बहुत ही उदार हैं। वैद्यदेव और जयशील दोनों हंसों के रथ पर शीघ्र यहीं पर आनेवाले हैं।"

नदी के तट पर जो घटना हुई थी, उससे माया सरोवरेश्वर सर्वथा अनभिज्ञ था। इसलिए मकरकेतु की बातें उसकी समझ में न आईं। फिर भी जलग्रह पर सवार होने से कम से कम उसकी सुरक्षा होगी, इस ख्याल से वह क़दम में क़दम मिलाते उसके निकट पहुँचा। इस बीच मकरकेतु के हाथों में तलवार की चोट खाया हुआ जलवृक राक्षस कराहते पेड़ के तने के सहारे उठ खड़ा हुआ। थोड़ी
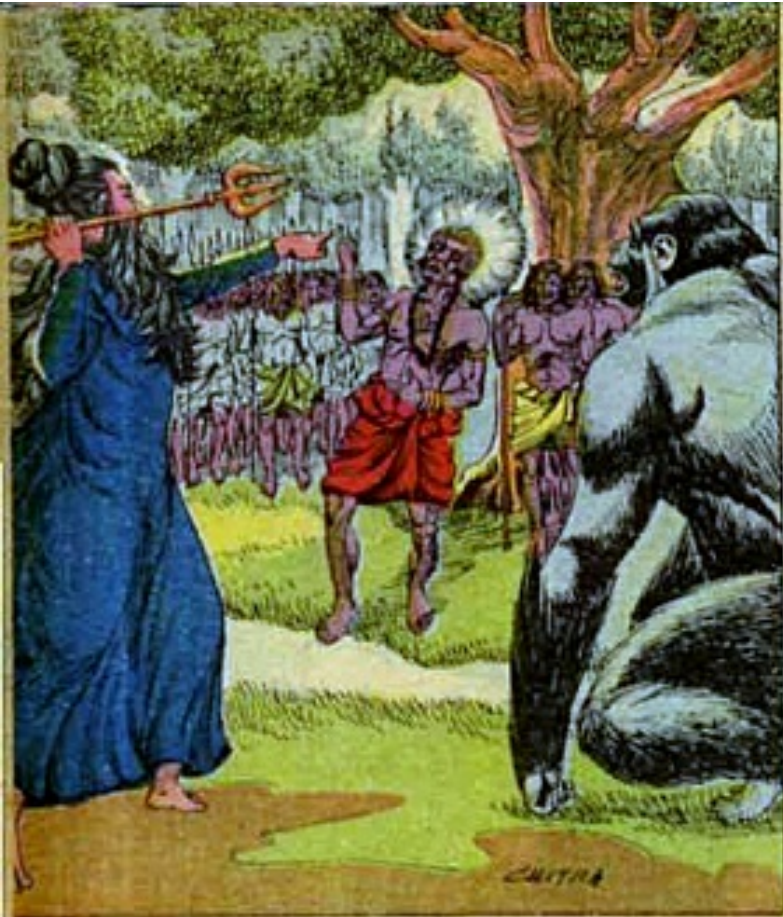
"मकरकेतु, मैं तुम्हारी अक़्लमंदी की दाद देता हूँ। राजा कनकाक्ष के बच्चों की खोज कराकर उनकी रक्षा करके राजा के हाथ सौंपे बिना मैं और जयशील हम दोनों किन्हीं नर भक्षी लोगों का आहार बन जाना नहीं चाहते। मैं उन जंगली लोगों को समझाने की कोशिश करता हूँ। यदि मेरी बातों पर ध्यान न दिया तो औरतों तथा बच्चों को छोड़ बाक़ी सब को एक ही कतार में खड़ा करके निर्दयतापूर्वक सब के सर काट डालेंगे।" सिद्ध साधक ने क्रोध पूर्ण स्वर में कहा।

गणाचारी तब तक आँखें मूँदे झूम रहा था, वह अचानक उछल पड़ा और चिल्ला उठा–"हे मेरे जंगली देवता!" फिर बोला–"भूख! भूख! अरे जंगली देवता के द्वारा हमारे लिए आहार के रूप में भेजे गये मानवो! यूँ देखते क्या हो? चलो, जंगली देवता के मंदिर में। वहाँ पर पहले हम तुम्हें देवता के लिए नैवेद्य चढ़ाकर तब हम खा डालेंगे।"

सिद्ध साधक जरा भी विचलित हुए बिना शूल उठाकर बोला–"अरे नर मांस भक्षी! तुम लोग भूल कर रहे हो! हम किसी के भी द्वारा तुम्हारे वास्ते आहार के रूप में भेजे नहीं गये हैं। हंसों के रथ पर से फिसलकर जंगल में गिरे हुए हमारे

देर बाद सिद्ध साधक को देख नीरस स्वर पूछा–"मालिक! क्या आज्ञा है?"

"मैं समझता हूँ कि तुम्हारी चोट कोई गहरी नहीं है। तुम पहले अपना गदा हाथ में ले लो।" यों जलवृक को आदेश दे सिद्ध साधक ने मकरकेतु से पूछा–"जानते हो, अब किसके द्वारा किसको खतरा उत्पन्न होने जा रहा है?"

"ये नर भक्षी इस भ्रम में पड़े हुए हैं कि जंगली देवता ने हमें उनके आहार के रूप में भेज दिया है। सबसे पहले हमें इन दुष्टों से अपनी रक्षा करनी है।" मकरकेतु ने तलवार की मूठ को कसकर पकड़ते हुए उत्तर दिया।

प्रिय जनों की खोज में आये हैं। उनमें से माया सरोवरेश्वर हमारे हाथ लगा है। अब हम अपने रास्ते चल देते हैं, तुम लोग भी अपना रास्ता नाप लो।"

"हमारी भूख की बात क्या होगी? हम लोग कई सप्ताहों से आहार के अभाव में उपवास कर रहे हैं।" सरदार शेरसिंह अपने भाले को चमकाते सिद्ध साधक के सामने आ खड़ा हुआ।

"हमारे जंगली देवता ने तुम्हें और माया सरोवरेश्वर नामक इस मानव को भी आसमान से सीधे यहाँ पर उतार दिया है। क्या यह बात कभी झूठ हो सकती है?" इन शब्दों के साथ गणाचारी उछल-कूद करने लगा।

फिर क्या था, सिद्ध साधक का संकेत पाकर नर वानर ने सरदार शेरसिंह को अपने दोनों हाथों से मरोड़कर पकड़ लिया और उसे ऊपर उठाया। तभी माया सरोवरेश्वर द्वारा सवार जलग्रह एक ही छलांग में आगे बढ़ा। अपनी सूंड फैलाकर गणाचारी की कमर पकड़कर ऊपर उठाये घुमाने लगा। सरदार शेरसिंह और गणाचारी चीखते-चिल्लाते अपने अनुचरों को आदेश देने लगे—"हमारे आहार बने इन मानवों को मत छोड़ो। भालों से चुभो-चुभोकर इन्हें बन्दी बनाओ।"

"जलवृक! देखते क्या हो? इन नर भक्षी लोगों को अपने गदे से चकना चूर

कर दो।" यों सिद्ध साधक ने जलवृक राक्षस को सचेत किया।

जलवृक राक्षस ने "सिद्ध साधक महाराज की जय!" चिल्लाकर अपना गदा उठाया और नर भक्षी लोगों पर टूट पड़ा। भूख से प्राणों का मोह तक त्यागनेवाले नर भक्षियों ने उनका सामना किया। जलवृक राक्षस अंधा-धुंध नर भक्षी लोगों पर गदे का प्रहार करने लगा। नर भक्षी लोग अपने भालों से उसे घायल बनाने की कोशिश करते चिल्लाने लगे। उस कोलाहल से सारा जंगल गूंज उठा।

सिद्ध साधक ने देखा कि जलवृक राक्षस अपने प्राणों का मोह छोड़कर लड़ रहा है, इस पर तारीफ़ करते बोला–"शाबाश! जलवृक! तुम पौरुषवान और हिम्मतवर भी हो! मैं तुम्हारी मदद के लिए आ रहा हूँ।" यों कहते नर वानर को आदेश दे शेरसिंह को दूर फेंकवा दिया, तब 'महाकाल की जय' पुकारकर शूल उठाये नर भक्षी लोगों की ओर अपने नर वानर को दौड़ाया।

इसके दूसरे ही क्षण दस अश्वारोही तेजी के साथ वहाँ पर आ पहुँचे। चिल्लाकर बोले–"रुक जाओ, रुक जाओ! यह राजा कनकाक्ष का आदेश है।"

अश्वारोहियों की चेतावनी सुनकर सिद्ध साधक और नर भक्षी लोग अपनी लड़ाई बंद करके आश्चर्य के साथ उनकी ओर ताकने लगे। पर माया सरोवरेश्वर आपाद मस्तक कांपते हुए बोला–"मकरकेतु, हमें शीघ्र माया सरोवर पहुँचना उचित होगा न?"

ये बातें सुन सिद्ध साधक आँखें लाल करके बोला–"अरे दुष्ट मया सरोवरेश्वर! तुम कहीं भी भाग नहीं सकते! तुम जिसे अपने लिए हित की बात समझते हो, वही तुम्हारे लिए अहित होने जा रही है। खबरदार!" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने उसके वक्ष पर अपना शूल टिका दिया। (और है)

असफल योजना

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा—"राजन, मैं नहीं जानता कि आप शायद अपने वचन का पालन करने के हेतु इस प्रकार श्रम उठा रहे हो! पर कुछ असाधारण स्थितियों में अपने वचन का पालन करना असंभव हो जाता है। इसके उदाहरण स्वरूप में आप को मणिमेखला की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।"

बेताल यों कहने लगा: प्राचीन काल में मालव तथा पांचाल देशों के बीच गहरी दुश्मनी थी। मालव देश के राजा वीरसेन के जयसिंह नामक एक पुत्र था। पांचाल नरेश विमलादित्य की मणिमेखला नामक एक अनुपम रूपवती कन्या थी। विमलादित्य

बेताल कथाएं

ने मणिमेखला के स्वयंवर का प्रबंध किया और समस्त देशों के राजाओं के पास निमंत्रण-पत्र भेजे। इस पर अधेढ़ उम्र के राजा भी मणिमेखला के साथ विवाह करने के ख्याल से स्वयंवर में भाग लेने आये।

मगर विमलादित्य ने अपने शत्रु राजा वीरसेन के यहाँ निमंत्रण नहीं भेजा। इस पर वीरसेन को बड़ा क्रोध आया। क्योंकि वीरसेन खुद मणिमेखला के साथ विवाह करने की बड़ी कामना रखता था।

इस कारण वीरसेन ने अपने पुत्र विजयसिंह को बुलाकर आदेश दिया-"तुम इसी क्षण हमारे सैनिक दल ले जाकर पांचाल देश पर आक्रमण करो और विमलादित्य को हराकर उनकी पुत्री मणिमाला को बन्दी बनाकर ले आओ। मैं उस कन्या के साथ विवाह करना चाहता हूँ।"

अपने पिता का आदेश पाकर विजयसिंह ने पांचाल देश पर हमला किया और विजय प्राप्त की। लेकिन विमलादित्य ने युद्ध क्षेत्र से भागकर अपने प्राण बचाये। पर सारा राज परिवार विजयसिंह के हाथ बन्दी बना। विजयसिंह ने आदर के साथ मणिमेखला को अपने सामने बुलवा भेजा, पर उसके रूप-सौंदर्य को देख वह चकित रह गया।

थोड़ी देर पश्चात संभलकर बोला-"राजकुमारी! मेरे पिताजी आप के साथ विवाह करने की तीव्र इच्छा रखते हैं। इसलिए आप कल मेरे साथ हमारे राज्य में जाने के लिए तैयार रहिये।"

मणिमेखला विजयसिंह की बातें सुन मौन रह गई, थोड़ी देर बाद अपने महल को चली गई।

उस दिन रात को विजयसिंह मणिमेखला की सुंदरता का स्मरण करते सो नहीं पाया। वह अपने महल में टहल ही रहा था, तभी एक परिचारक ने मणिमेखला के यहाँ से पत्र लाकर उसके हाथ दिया।

उसमें यों लिखा था–"वीरता प्रदर्शित करके जिस वस्तु को आपने प्राप्त किया, उसे दूसरों के हाथ सौंप देना उचित नहीं है।"

पत्र को पढ़कर विजयसिंह ने भांप लिया कि मणिमेखला उसी के साथ विवाह करना चाहती है। पहले ही से वह मणिमेखला पर मोहित था, इसलिए जब मणिमेखला के दिल की बात मालूम हुई, तब उसने उसके साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया। दूसरे दिन मालव लौटने की यात्रा स्थगित हो गई। उसी दिन विजयसिंह ने मणिमेखला के साथ विवाह कर लिया।

उस दिन रात को विजयसिंह अपनी पत्नी से मिलने उसके शयनागार में पहुँचा। रतीदेवी जैसी अलंकृत मणिमेखला के वह निकट पहुँचा। अचानक मणिमेखला ने अपनी कमर में से कटार निकालकर विजयसिंह की छाती में भोंकने का प्रयत्न किया।

विजयसिंह ने मणिमेखला का हाथ पकड़कर मरोड़ दिया। कटार नीचे गिर पड़ी। तब विजयसिंह ने पूछा–"तुम ने मेरे साथ प्रेम करने का अभिनय किया, मेरे साथ विवाह भी कर लिया, फिर भी तुमने मेरा वध करने का प्रयत्न क्यों किया? सच बताओ, मैं तुम्हें कोई दण्ड न दूँगा।"

इस पर मणिमेखला ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया–"युद्ध के पूर्व मेरे पिताजी ने मुझे आदेश दिया था कि अगर युद्ध में

हमारी पराजय हुई तो इसका प्रतीकार करो। उनके आदेश का पालन करने का मैंने यत्न किया। मगर मैंने आप के साथ प्रेम करने की बात जो व्यक्त की, इसमें कोई असत्य नहीं है। आप मुझे जो भी दण्ड दे, मुझे कोई आपत्ति न होगी।"

विजयसिंह थोड़ी देर तक गंभीर हो कुछ सोचता रहा, फिर वह किसी निर्णय पर पहुँचा और वहाँ से चुपचाप कहीं चला गया। इसके बाद उसका कुछ पता न चला।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन, विजयसिंह अपनी प्रेयसी को छोड़ क्यों कहीं चला गया? क्या इस कारण कि उसने विजयसिंह का वध करने का प्रयत्न किया जिसे वह क्षमा न कर पाया? मणिमेखला ने स्वयं मान लिया था कि वह विजयसिंह के साथ प्यार करती है, ऐसी हालत में उसे अनाथ छोड़कर क्यों चला गया? कम से कम वह अपने देश को भी क्यों लौटकर नहीं गया? इन संदेहों का समाधान जानकर भी जवाब न दोगे तो तुम्हारा सर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया:

"विजयसिंह द्वारा मणिमेखला को त्यागने में उसका कोई दोष नहीं है। अगर मणिमेखला का प्रयत्न सफल होकर विजयसिंह मर गया होता तो वह किसी भी हालत में अनाथ हो जाती। विजयसिंह के चले जाने का असली कारण यह है कि उसने मणिमेखला से एक अच्छा सबक़ सीख लिया है। मणिमेखला ने विजयसिंह के साथ प्यार करते हुए भी अपने पिता के आदेश का पालन करने का प्रयत्न किया। जब कि विजयसिंह ने मणिमेखला के प्रति प्यार के कारण अपने पिता के आदेश का तिरस्कार किया। इसी कारण वह अपने देश को न लौटकर कहीं अज्ञात की ओर चला गया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पुनः पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

अछूत का पिशाच

महाराजा शकारी साहसी और विवेकशील थे। वे जाति के ब्राह्मण थे, इस कारण उनके दरबारी भी अधिक संख्या में ब्राह्मण नियुक्त किये गये थे, पर उनके मंत्री क्षत्रिय थे। महाराजा शकारी को शत्रुओं का कोई भय न था। मगर उन्हें किसी चीज़ से डर था, तो वह बाढ़ थी। हर साल वर्षाकाल में सुंदरी नदी में भयंकर बाढ़ आती और राजधानी को अपार क्षति पहुँचा देती थी। बाढ़-नियंत्रण करने के लिए राजा ने जो भी प्रयत्न किये, वे सब असफल रहें।

उसी नगर के एक चर्मकार का बेटा लोचन बचपन में ही कहीं घर से भाग गया था। लोगों में यह अफ़वाह फैल गई थी कि लोचन मंत्र-विद्याएँ सीखने कामरूप देश में चला गया है, तो कोई कहते, वह यंत्र-विद्याएँ सीखने कर्मपुर गया है। मगर पंद्रह साल बाद लोचन घर लौट आया। उसके मुख पर तेज़ और आँखों में कांति चमक रही थी।

लोचन के लौटने पर उसके सारे रिश्तेदार खुश हुए। सब के पूछने पर लोचन ने यही जवाब दिया-"मैंने अपनी माँ को बाढ़ में बहकर जाते अपनी आँखों से देखा। उस क्षण से मैं यही सोचने लगा था कि किस तरह सुंदरी नदी की बाढ़ को नियंत्रण में लाया जाय! वही विद्या सीखने मैं कई देशों में घूमता रहा। आखिर मैंने बाढ़ को नियंत्रण में लाने की विद्या सीख ली।" इसके बाद उसने राजा से इस संबंध में चर्चा करने का निश्चय कर लिया।

लेकिन महाराजा शकारी विवेकशील होने पर भी छूआछूत का ख्याल रखते थे। इसलिए राजा ने सोचा कि एक

श्री. ए. सी. सरकार, जादूगर

सकते हो?" प्रधान मंत्री ने लोचन से पूछा।

"मुझे इस पर विचार करना पड़ेगा।" लोचन ने जवाब दिया।

आखिर प्रधान मंत्री ने बड़े प्रयास के साथ राजा को इस बात के लिए मनवा लिया कि लोचन को दरबार में बुलवा कर यह साबित करवा लेना उचित होगा कि वह सचमुच पर पानी पर नियंत्रण कर सकता है या नहीं।

राजा ने पूछा-"क्या लोचन यह मानता है कि गंगामाता उसके अनुकूल है और उसकी बात मान लेती है?"

"महाराज! लोचन कहता है कि जलप्रवाह को रोकने की वह शक्ति रखता है और दरबार में वह इस बात को साबित कर सकता है!" मंत्री ने उत्तर दिया।

चर्मकार के पुत्र के द्वारा बाढ़ को नियंत्रण में लाने की बात विश्वास करने की नहीं है। इसलिए उसके साथ चर्चा करना अनावश्यक है। राजा के इस विचार का उनके ब्राह्मण मंत्रियों ने भी समर्थन किया।

पर प्रधान मंत्री धर्मपाल अत्यंत उदार और साहसी था। उसने गुप्तरूप से लोचन से मिलकर चर्चा की और अंत में यह जान लिया कि लोचन बाढ़ को नियंत्रण में रखने की प्रक्रिया जानता है।

"पानी को नियंत्रण में रखने की बात पर राजकर्मचारियों के द्वारा विश्वास दिलाने के लिए तुम क्या कोई प्रयोग कर

राजा की अनुमति पाकर लोचन निश्चित समय पर दरबार में पहुँचा। उसके हाथ में छे इंच ऊँचे और तीन इंच व्यास वाला एक डिब्बा था। उसका एक ढक्कन भी था जिसमें कई पतले सूराख थे।

"इस डिब्बे में पानी भरकर ढक्कन बंद करके उसे औंधे मुंह रख दे तो ढक्कन के सूराखों से पानी की धाराएँ

छूटेंगी। आप लोग देखते रहिए।" इन शब्दों के साथ लोचन ने डिब्बे में पानी भर दिया, उसमें ढक्कन बंद कर औंधे रखा। ढक्कन के सूराखों से पानी की धाराएँ छूट निकलीं।

इसके बाद लोचन चिल्लाकर बोला– "गंगामाई, रुक जाओ!"

दूसरे ही क्षण सभी धाराएँ रुक गईं।

थोड़ी देर बाद लोचन बोला–"गंगामाई, फिर से बहो!" तुरंत धाराएँ छूट निकलीं।

"लोचन, तुम धन्य हो!" ये शब्द कहते राजा ने लोचन के साथ आलिंगन कर लिया। दरबारी ब्राह्मणों को राजा का अनुकरण करना पड़ा।

इसके बाद सुंदरी नदी की बाढ़ पर नियंत्रण रखने की अनुमति लोचन को प्राप्त हो गई। नदी के ऊपरी भाग में पहाड़ों से लेकर निचले हिस्से के मैदान तक कई जगह नदी में बांध बनाये गये। कई प्रदेशों में पानी के जमा होने के हेतु सरोवर निर्मित किये गये। इस प्रकार लोचन ने न केवल बाढ़ से राजधानी को नुक़सान होने से बचाया, बल्कि गर्मी के दिनों में जब नदी सूख जाती है, तब भी जनता को बराबर पानी उपलब्ध करने के लिए अनेक सुविधाएँ कर दीं। इस पर राजा और उनके सलाहकारों ने अपनी पंक्ति में बिठाकर लोचन के साथ खाना खाया। सब ने यह सत्य जान लिया कि भगवान ने समान रूप से सब लोगों की सृष्टि की है। मानव ने ही मानवों के बीच अंतर पैदा किये हैं।

डिब्बे के पानी को लोचन ने कैसे रोका? डिब्बे के तल के किनारे एक पतला सूराख है। उसे लोचन ने अपनी उंगली से बंद की, जिससे पानी की धारा रुक गई। लेकिन उंगली को थोड़ा सरका दे तो फिर से धाराएँ निकल पड़ेंगी। बस यही बात है। इस प्रक्रिया में गंगामाई का कोई अनुग्रह नहीं है।

विद्वान का चुनाव

कलिंग के राजा अपने दरबारी गायक रामशर्मा के संगीत को दिलो जान से पसंद करते थे। थोड़े दिन बाद रामशर्मा पागल हो गये। इस पर राजा को एक दूसरे संगीत विद्वान को नियुक्त करना पड़ा।

देश के संगीत विद्वानों में रत्नपाल ज्यादा लोकप्रिय था। मंत्री ने रत्नपाल के साथ कुछ अन्य विद्वानों को भी राजा को संगीत सुनाने के लिए निमंत्रित किया, पर राजा को उनमें से किसी का भी संगीत पसंद न आया। वे बोले–"रामशर्मा जैसे कोई गा नहीं सकते, इसलिए दूसरे देशों से विद्वानों को बुलाइए।"

दरबारी लोग यह सोचकर दुखी हुए–"क्या हमारे देश में कोई संगीत का महान विद्वान नहीं है? दूसरे देशों से बुलाने की क्या जरूरत है?"

मंत्री ने पड़ोसी देशों के विद्वानों को अपना संगीत सुनाने के लिए बुला भेजा, लेकिन पहले ही उन्हें खूब धन देकर सावधान किया–"मैं नहीं कह सकता कि आप लोग तन्मय होकर गायेंगे तो न मालूम राजा क्या कर बैठे? सावधान!"

इसके बाद उन लोगों का संगीत सुनने पर राजा ने कहा–"इस से तो रत्नपाल का संगीत ही कहीं अच्छा है।" फिर क्या था? दरबारी संगीत विद्वान के पद पर रत्नपाल को नियुक्त किया गया।

अधर्मशाला

विमलापुर एक जमीन्दार का गाँव है। उस गाँव का जमीन्दार जनता का खून चूसनेवाला था। जनता जमीन्दार से घृणा करती थी, मगर उसे प्रकट करने की हिम्मत नहीं रखती थी।

गोविन्द अपने कुत्ते को साथ ले विमलापुर पहुँचा। उसने एक जगह एक बड़ा मकान देखा जिस पर "धर्मशाला" नाम मोटे अक्षरों में लिखा गया था। गोविन्द धर्मशाला के भीतर पहुँचा। नौकर ने हाथ मुंह धोने के लिए पानी लाकर पूछा–"क्या तुम खाना खाओगे?" गोविन्द ने सर हिलाया।

"तब तो तुम साहब से जाकर मिल लो।" नौकर ने धर्मशाला के अधिकारी के कमरे की ओर इशारा किया।

अधिकारी ने गोविन्द का नाम लिखकर कहा–"पांच रुपये दे दो।"

"क्या कहा? खाने की क़ीमत पांच रुपये? बाहर तो 'धर्मशाला' लिखा हुआ जो है?" गोविन्द ने पूछा।

अधिकारी ने मुस्कुराते हुए कहा– "यह तो खाने की क़ीमत नहीं, हम लोग इस गाँव में शीघ्र ही एक शिवाला बनवाने जा रहे हैं। इसके वास्ते धन वसूल करने के लिए इस धर्मशाला के निधिपालक जमीन्दार साहब ने आदेश दिया है।"

गोविन्द खाने का विचार त्याग कर गाँव के भीतर चला गया। एक जगह उसने एक दृश्य देखा। दो दृढ़काय व्यक्ति एक घर से जबर्दस्ती एक गाय को खींचकर ले जा रहे हैं। गाय का मालिक रोते हुए, सर पीटते उनके पैरों पर गिर रहा है।

गोविन्द को उस गरीब पर दया आ गई। उसने गरीब के समीप जाकर

कमल प्रसाद

जाय कि हम दोनों ने उसकी निंदा की है, तो हमें जान से मार डालेगा।" गरीब ने डरते-सहमते हुए जवाब दिया।

"अगर धर्मशाला का मालिक जमीन्दार है, तो उसमें अधिकारी बनकर बैठा हुआ वह व्यक्ति कौन है? वह भी जमीन्दार जैसा लगता है?" गोविन्द ने पूछा।

"वह जमीन्दार जैसा क्यों न लगेगा! आखिर वह जमीन्दार का साला जो ठहरा! अब मेरी गाय को ज़बर्दस्ती जो लोग खींच ले गये, वे जमीन्दार के नौकर हैं। भालू हैं, भालू!" गरीब ने कहा।

गोविन्द ने सोचा 'जमीन्दार और उसका साला–ये दोनों दो भेड़िये हैं! उनके नौकर दो भालू हैं। ये चारों मिलकर गाँव की भोली जनता को दिन दहाड़े लूट रहे हैं।' यों सोचकर गोविन्द ने निश्चय कर लिया कि इनकी खबर लेकर ही वह इस गाँव से चला जाएगा।

पूछा–"भाई, सुनो, वे लोग कौन थे? तुमने उनसे क्या कर्ज लिया था?"

"कर्ज देना होता तो मुझे चिंता किस बात की होती? यह तो जमीन्दार की निरंकुशता है। आज तक धर्मशाला बनाने के नाम से गाँववालों का खून चूस लिया है। अब शिवाला के नाम से हम लोगों को लूट रहा है।"

गोविन्द को जमीन्दार पर गुस्सा आया। "गरीबों को चूसकर धर्मशालाएँ और शिवाले बनाना कैसे?" गोविन्द ने पूछा।

"जो लोग चन्दा नहीं दे पाते, उनके घर से इसी प्रकार मवेशी हांक ले जाते हैं। अगर यह बात उसे मालूम हो

थोड़े ही दिनों में गोविन्द ने ग्रामवासियों के साथ अपनी घनिष्टता बढ़ाई और उनकी मदद से एक नाटक रचने की तैयारी की। इसके बाद जमीन्दार से मिलकर गोविन्द ने कहा–"आप बड़े ही धर्मात्मा हैं! दस रुपये खर्च हो गये तो क्या हुआ? धर्मशाला में आपने भोजन का बढ़िया इंतज़ाम किया है।"

जमीन्दार ने चौंककर पूछा–"क्या कहा? उसने तुम से दस रुपये ले लिये?"

"दस रुपये कोई बड़ी बात नहीं, तिस पर शिवाला बनवाने के लिए वसूल किया गया है न?" गोविन्द ने कहा।

"तुम्हारी बात सच है तो मैं उस अधिकारी का चमड़ा उधेड़ दूंगा। मैंने तो उसे पांच रुपये ही वसूलने को कहा था! क्या वह मुझे ही धोखा दे रहा है?" जमीन्दार ने क्रोध में आकर कहा।

गोविन्द ने कहा–"ओह, ऐसी बात है! तब तो वह धर्मशाला की आधी आमदनी हड़प रहा है न? एक व्यक्ति से पांच रुपये? तिस पर कम से कम प्रति दिन धर्मशाला में पचास लोग भोजन करते हैं न! उफ़! कैसा धोखा है!"

जमीन्दार के क्रोध का पारा चढ़ गया। "प्रति दिन पचास लोग भोजन करते हैं? इतने लोगों का हिसाब उसने मुझे आज तक नहीं दिया है?" जमीन्दार ने कहा।

"ओह! आप ऐसे भोले व्यक्ति हैं, इसीलिए वह आपको दगा दे रहा है! आप चाहे तो अपने एक विश्वास पात्र व्यक्ति को मेरे साथ भेज दीजिए! वह जो धोखा दे रहा है, उसे वह अपनी आँखों से खुद देख सकता है! मैं चार दिनों से धर्मशाला में ही तो हूं।" गोविन्द ने कहा।

जमीन्दार ने गोविन्द की बात मान ली और उसके साथ अपने एक नौकर को भेजा। उस दिन शाम को गोविन्द जमीन्दार के नौकर को साथ ले धर्मशाला के सामने ओट में छिपा रहा।

गोविन्द ने कुछ युवकों को इकट्ठा किया। वे लोग पगड़ी बांधे यात्रियों की भांति दल के दल धर्मशाला में गये। कुछ लोग हाथ-मुंह साफ़ करते डकार लेते धर्मशाला से बाहर निकलने लगे। इसे जमीन्दार के विश्वासपात्र नौकर ने देखा। उसने जमीन्दार के पास जाकर कहा–"मालिक! इस एक जून में पचास–साठ लोगों ने धर्मशाला में खाना खाया। मैंने खुद उन्हें देखा।"

असली बात उसकी समझ में न आई, साथ ही मार सहन न कर सकने की हालत में वह वहाँ से भाग गया। यह कुछ कहना चाहता था, मगर जमीन्दार ने उसे मौक़ा नहीं दिया।

इसके बाद गोविन्द ने धर्मशाला में जाकर जमीन्दार के साले के प्रति सहानुभूति दिखाते हुए कहा–"ओह! जमीन्दार कैसे भयंकर आदमी हैं! आप भी उनके बराबर के हैं। फिर भी इस बात का ख्याल किये बिना उन्होंने ऐसा पीटा जैसे भैंस को पीटा जाता है। तिस पर भी आप ही की वजह से तो वे इतने बड़े आदमी हो गये हैं। यदि आपने इसका बदला न लिया तो लोगों के बीच सर उठाकर कैसे चल-फिर सकते हैं?" यों गोविन्द ने उसे उकसाया।

"बदला कैसे लूँ?" जमीन्दार के साले ने गोविन्द की सलाह माँगी।

"जमीन्दार की मदद देनेवाले इस गाँव में उनके दो विश्वासपात्र नौकरों को छोड़ और कौन हैं? मैं आप की तरफ़ से अपनी जान तक क़ुर्बान कर सकनेवाले पच्चीस युवकों को ला सकता हूँ।" गोविन्द ने समझाया। इस पर जमीन्दार के साले की हिम्मत बंध गई।

"हाँ, तुम ठीक कहते हो! इस गाँव के सभी लोग उसकी मौत का

ये बातें सुनने पर जमीन्दार की आँखें क्रोध के मारे लाल हो उठीं; पर गोविन्द ने उसे समझाया–"देखेंगे, आज धर्मशाला का अधिकारी कितने लोगों का हिसाब देता है! उसका जवाब सुनकर तब उस पर कोई कारंवाई लेना उचित होगा।" इस पर जमीन्दार शांत हो गया।

दूसरे दिन सवेरे जमीन्दार के साले ने धर्मशाला का हिसाब दिया। उसके अनुसार सिर्फ़ बाहर लोगों ने खाना खाया था। जमीन्दार ने क्रोध में आकर डाँटा–"तुम इस प्रकार मुझे कितने दिनों से धोखा दे रहे हो?" इन शब्दों के साथ उसने चाबूक लेकर धर्मशाला के अधिकारी को पीटा।

इंतजार कर रहे हैं! मैं अभी जाकर उसकी खबर लूंगा।" इन शब्दों के साथ जमीन्दार के साले ने अपने हाथ में चाबूक लिया।

"आप शांत हो जाइए। जमीन्दार को यहीं पर बुलवा लेना ज्यादा अच्छा होगा। आप एक काम कीजिए–धर्मशाला पर निधिपालक के रूप में उनका नाम हटाकर आप अपना नाम लिखवाइये। बस, बाक़ी सारा काम मैं करवा देता हूँ।" गोविंद ने अपनी योजना बताई।

जमीन्दार के साले ने गोविन्द के कहे अनुसार करवा दिया। यह खबर मिनटों में जमीन्दार के कानों में पड़ गई। वह चाबूक हाथ में ले अपने नौकरों के साथ तुरंत धर्मशाला के पास आ पहुँचा।

जमीन्दार ने दांत पीसते हुए गरज कर पूछा–"अबे, तुम्हारी यह हिम्मत? तुम निधि पालक के रूप में अपना नाम लिखवा लेते हो? बताओ, तुमने क्यों ऐसा किया?"

"बैल की तरह क्यों रंभाते हो? क्या यह धर्मशाला तुम्हारे बाप की है? इस में जो पैसा लगा है, कौड़ी-कौड़ी जनता की है। धर्मशाला बनाकर इसे चलाने वाला मैं हूँ? तो फिर तुम कैसे निधि पालक बन बैठे हो?" जमीन्दार के साले ने पूछा।

"अरे दुष्ट! क्या बकते हो?" यों चिल्लाते जमीन्दार अपने साले की ओर बढ़ा। जमीन्दार का साला पहले ही उसका सामना करने को तैयार था। उसने खींच कर जमीन्दार के मुंह पर दे मारा। उसी क्षण जमीन्दार के नौकर उसकी मदद के लिए आगे बढ़े।

तब तक प्रेक्षकों की भांति सारा तमाशा देखनेवाले गोविन्द के साथियों ने जमीन्दार के नौकरों को पकड़ लिया और ख़ूब उनकी मरम्मत की। जमीन्दार ने उन युवकों की ओर तीक्ष्ण दृष्टि डाली।

"क्या हमको डराना चाहते हो? तुमने आज तक धर्मशाला और शिवाले के नाम

पर बेचारे इन लोगों का खून चूस लिया है। फिर भी ये लोग आज तक इसे सहते रहें। अब ये लोग सहनने को तैयार नहीं हैं। यही बता रहे हैं। बस! समझें।" जमीन्दार के साले ने जमीन्दार से कहा।

इस पर जमीन्दार ने कहा—"अरे कुत्ते! क्या तुमने इस रक़म में क्या कम खाया? धर्मशाला में ठहरनेवाले यात्रियों और व्यापारियों को लूटकर क्या तुमने यह अफ़वाह नहीं फैलायी कि चोरों ने उन्हें लूट लिया है? जहाँ पर धर्मशाला बनी है, वहाँ की झोंपड़ियों में रहनेवाले लोगों को भगाने के लिए क्या तुमने उन झोंपड़ियों में आग न लगवाई? अब जाकर तुम मुझे उपदेश देने चले हो?"

"अरे पापी! क्या ये सारे काम तुमने ही मुझसे नहीं कराये? मेरी आँखों के सामने से हट जाओ। वरना तुम्हारी जान की खैर नहीं!" साले ने कहा।

इस प्रकार जब वे दोनों एक-दूसरे के अत्याचारों को खोलने लगे, तब वहाँ पर इकट्ठे हुए युवकों की सहनशीलता जाती रही। वे लोग उन दोनों को पीटने को तैयार हो गये। इस पर गोविंद ने उन्हें रोककर जमीन्दार तथा उसके साले को यों समझाया: "वास्तव में आप दोनों समाज को चूसनेवाले कीड़े हैं। अपने ही मुंह से आप लोगों ने अपने अपराध प्रकट किये। इसलिए आप दोनों इस गाँव को छोड़कर कहीं और चले जाइये। जब तक जनता भोले बनकर अपनी आँखें मूंदे बैठी रही, तब तक आप उन्हें लूटते रहें, अब उनकी आँखें खुल गई हैं, इसलिए आप दोनों का यहाँ पर रहना खतरे से खाली नहीं है।"

जमीन्दार और उसके साले ने गोविंद की ओर इस तरह देखा, जिसका अर्थ था—"क्या यह सारा नाटक तुमने ही रचा था?"

इसके बाद गोविंद तब तक उस गाँव में रहा, जब तक वे दोनों उस गाँव को छोड़कर न गये। तब वह अपने कुत्ते को साथ ले दूसरे गाँव की ओर चल पड़ा।

दावत की दवा

रामरतन की शादी हाल ही में हो चुकी थी। वह किसी कंपनी का कर्मचारी था। गणपति नामक उसका एक मित्र था। एक दिन गणपति अपनी पत्नी गंगा के साथ उसके घर पहुँचा और अपने पुत्र की वर्ष-गांठ के लिए रामरतन और उसकी पत्नी कावेरी को न्योता दिया। दावत में खाली हाथ जाना उचित न समझकर रामरतन ने कोई उपहार लिया, साथ ही अपनी पत्नी के लिए नये वस्त्र खरीदे, दूसरे दिन गणपति के घर पहुँचे।

कावेरी के लिए जन्मगांठ और दावतें बिलकुल नई थीं। गणपति के घर की सजावट और कोलाहल देख वह उत्साह में आ गई। गंगा रेशमी वस्त्र और क़ीमती गहने पहनकर बहुत ही व्यस्तता के साथ इधर-उधर दौड़ रही थी। जन्मगांठ में आये हुए सभी लोग कोई न कोई उपहार लड़के के हाथ पकड़ा देते थे। दावत के बाद एक कोने में ढेर लगे उपहारों को देखने पर कावेरी की आँखें चकरा गईं।

घर पहुँचने पर कावेरी ने अपने पति रामरतन से कहा—"गंगा के लड़के की जन्मगांठ कैसे ठाठ से मनाई गई है? हम लोग गणपति से किस बात में कम हैं? हम लोग भी शीघ्र एक दावत का इंतज़ाम करेंगे।"

रामरतन अपनी पत्नी के शौक का तिरस्कार न कर सका।

एक हफ़्ता भी पूरा न हो पाया था, कावेरी ने गंगा के घर जाकर न्योता देते हुए कहा—"कल मेरी जन्मगांठ है। हम दावत देने जा रहे हैं, आप लोगों को जरूर आना है।" इसके बाद गंगा को साथ ले उसकी मदद से अड़ोस-पड़ोस के सभी घरवालों को न्योता दे आई।

जगन्नाथ शर्मा

कावेरी ने दावत की तैयारी भारी पैमाने पर कर दी। निमंत्रित व्यक्ति पच्चीस से अधिक थे और वे सब उपहार लेकर आये थे। सबने दावत की तैयारी की बड़ी तारीफ़ की। उस दिन से लेकर गंगा और कावेरी के बीच दावतों की होड़-सी लग गई। मौक़ा मिलने पर वे लोग साल में तीन-चार जन्मगाँठें मनाने लगीं।

एक साल के पूरा होते-होते इन दावतों के मारे रामरतन और गणपति नाकों दम हो गये। वे दोनों जब बाजार में अचानक मिले तब अपनी-अपनी पत्नी के बारे में दिल खोलकर बातें कीं।

गणपति ने शिकायत के स्वर में कहा–"मेरी पत्नी इन दावतों के शौक से न मालूम कब मुक्त हो जाएगी? यक़ीन करो, मेरी जान ले रही है।"

"मेरी पत्नी इस बात में कम नहीं है। तुम्हारी औरत की कृपा से मेरी औरत के दिमाग पर भी दावतों का पागलपन सवार हो गया है।" रामरतन ने उलाहना भरे स्वर में कहा।

"मेरी पत्नी कह रही थी कि तुम्हारी पत्नी केवल उपहार पाने के लिए दावतों का बहाना कर रही है।" गणपति ने शिकायत की।

"हाँ, हाँ, मेरी पत्नी ने भी बताया है–"तुम्हारी पत्नी सिर्फ़ अपने गहनों का प्रदर्शन करने के लिए ही दावतें दे रही है।" रामरतन ने उलाहना दिया।

"तुम्हारी पत्नी के पागलपन को बड़ी आसानी से छुड़ाया जा सकता है।" इन शब्दों के साथ गणपति ने रामरतन को कोई उपाय बताया।

"तुम्हारी पत्नी के पागलपन को और आसानी से छुड़ाया सकता है।" रामरतन ने भी गणपति को कोई युक्ति बताई।

एक दिन कावेरी ने दावत का न्योता दिया। उसमें जाने की तैयारी करते हुए गंगा ने अपने गहनों की पेटी खोली और चीख उठी। क्योंकि उसमें एक भी गहना न था। सबके सब गायब थे।

वह चीखते-चिल्लाते खाली पेटी ले जाकर गणपति को दिखाते हुए बोली– "कहिए, मेरे सारे कहने क्या हुए?"

"गहने अब कहाँ रहे? आज तक थे, गनीमत थी। तुम समझती ही क्या हो? तुम महीने में दो दफ़े दावत देती थीं और दूसरों की दावत में भाग लेने जाते वक़्त बराबर बढ़िया उपहार ख़रीदकर ले जाती थीं–इसके लिए रुपये कहाँ से आ गये? मैंने अपने मालिक के यहाँ से दो हज़ार रुपये उधार लिया। उन्होंने उधार चुकाने की धमकी दी। इस पर मैंने गहने गिरवी रखकर कर्ज़ चुकाया। अपनी हैसियत से ज्यादा ख़र्च करने पर उसका फल यही होता है। आज से हम दो-तीन साल तक किफ़ायती करते जायेंगे तो तब जाकर हम अपने गहने छुड़ा सकते हैं।" गहने छिपानेवाले गणपति ने समझाया।

अपने गहने खोकर गंगा शाम तक रोती रही। उसने अपने मन में निश्चय कर लिया कि अब भूल से भी सही दावतें नहीं देनी हैं।

उस दिन रामरतन ने अपनी पत्नी से छिपाकर सब के घर जाकर समझाया– "आप लोग हर दावत में उपहार ला रहे हैं। यह कोई अच्छी बात नहीं है। यदि आप लोग उपहार लाना चाहते हैं तो कृपया आज की दावत में न आवे।" सब लोगों ने सोचा कि आज से उपहारों का पिंड छूट गया है।

उस दिन शाम को सारे मेहमान खाली हाथ आ धमके। इसे देख कावेरी का उत्साह ठण्डा पड़ गया। अतिथि जब दावत की तारीफ़ करने लगे, तब कावेरी का खून खौल उठा। वह बहुत ही उदास थी। जैसे तैसे दावत समाप्त हो गई।

सबके चले जाने पर कावेरी ने रामरतन से कहा–"देखा है न? एक भी उपहार न लाया। ये लोग सभ्यता नहीं जानते! मुफ़्त में दावत उड़ाकर डकारे लेते चले गये।"

"पगली, क्या हम ये दावतें उपहारों के लोभ में पड़कर थोड़े ही दे रहे हैं? क्या इन दावतों के पीछे जो खर्च होता है, उससे तुम अपने लिए ज़रूरी चीज़ें नहीं खरीद सकती थीं? अकाल के इन दिनों में ये नाहक खर्च क्यों करती हो? दस दावतें हम इसी प्रकार दे तो हमारा दीवाला निकल जाएगा।" यों रामरतन ने मीठे शब्दों में अपनी पत्नी को डांट बताई।

कावेरी को यह बात सही मालूम हुई। उसे भी दावतों से घृणा हो गई। उस दिन से गंगा और कावेरी ने दावतें देना बंद किया। मानो दोनों ने मिलकर कोई पूर्व योजना बनाई हो।

अपनी योजनाओं के सफल होने पर रामरतन और गणपति फूले न समाये। इस खुशी में दोनों ने एक भारी दावत दी और उस दिन से दावतों के लिए तिलांजली दी।

योग्य बहू

गजपति नगर में हीरालाल नामक व्यापारी ने कौड़ी-कौड़ी बटोर कर लाखों रुपये कमाये।

उसके एक ही पुत्र था। जब वह विवाह के योग्य हुआ, तब हीरालाल के मन में यह चिंता घर कर गई कि उसकी होनेवाली बहू क़िफ़ायत करनेवाली हो, गृहस्थी को कुशलता पूर्वक संभाल सकेगी या नहीं। वह अपने विचार के अनुरूप लक्षणोंवाली बहू की खोज में अपने पुत्र को साथ ले चल पड़ा।

हीरालाल ने कई रिश्ते देखें, पर धनी परिवारों की कन्याओं का ठाठ-बाट देख उसका दिल धड़क उठा। ऐसी कन्याओं को बहू बना ले तो उसकी सारी संपत्ति जल्द ही कपूर की भांति गल जाएगी। जब कहीं कोई अच्छा रिश्ता ठीक न बैठा तो घर लौटते हुए वह अपने एक मित्र के घर ठहर गया।

उस मित्र के घर विवाह के योग्य एक कन्या थी। वह बड़ी ही चतुर थी। वह कन्या हीरालाल के पुत्र को सामने बिठा कर कई सवाल करते कोई हिसाब लगा रही थी। इस पर व्यापारी ने उस से पूछा–"बात क्या है बेटी? हिसाब किस बात का लगा रही हो?"

"बात कुछ नहीं, आपने अपने पुत्र के विवाह के वास्ते काफ़ी रुपये ख़र्च किये हैं न? अब आप हमारे घर आये तो हमें भी ख़र्च होता है! यह नुक़सान कैसे भर्ती किया जाय, यही आप के पुत्र के साथ बैठकर हिसाब लगा रही हूँ।" कन्या ने जवाब दिया।

फिर क्या था, व्यापारी ने उसी वक़्त उस कन्या को अपनी बहू बना लिया।

दामाद का दायित्व

रंगराज का परिवार बहुत ही बड़ा है। उसके दस बच्चे हैं। पहली छे संतानें लड़कियाँ हैं, पर रंगराज सौ एकड़ की जमीन का मालिक था। इसलिए उसके परिवार के भरण-पोषण में कोई कठिनाई न थी।

बड़ी कन्या की शादी करने के बाद रंगराज एक भयंकर बीमारी का शिकार हुआ। इसलिए उसने अपने बड़े दामाद को अपने ही घर पर रहकर परिवार की सारी जिम्मेदारी संभालने का अनुरोध किया। बड़े दामाद राजनाथ को एक बड़ी गृहस्थी को संभालने का अधिकार आसानी से प्राप्त हुआ। वह बड़ा ही व्यवहार कुशल था। अपने ससुर के परिवार के मामलों को समझने में उसे ज्यादा समय न लगा। रंगराज के खेत और मवेशियों की देखभाल करने के लिए क़रीब तीस तक नौकर थे। वे सब रंगराज के विश्वास-पात्र थे।

राजनाथ मौक़ा पाकर अपने ससुर की संपत्ति जब भी मौक़ा मिलता, हड़पता गया। इस कारण वह ससुर के पारिवारिक खर्च में किफ़ायती करने लगा। वह साल में सिर्फ़ तीन ही दफ़े नये वस्त्र खरीदकर सबको देता था, हफ़्ते में एक ही बार पकवान बनाये जाने लगे।

राजनाथ ने अपनी चार सालियों की शादी ऐसे युवकों के साथ कर दी, जो उसके हाथ के खिलौने बनकर रह सके। उन लोगों ने भी यह सोचकर राजनाथ के अधिकार में दखल न दिया कि उसके विश्वासपात्र बने रहने पर वह उनके हर सुख और सुविधा का खुद ख्याल रखेगा।

लेकिन रंगराज की छठी कन्या ने वीरदास नामक युवक के साथ प्यार किया

और वह यह हठकर बैठ गई कि वह उस युवक को छोड़ किसी दूसरे के साथ शादी न करेगी, आख़िर उसकी इच्छा पूरी हुई। उस दिन से राजनाथ को उलझनों का सामना करना पड़ा।

वीरदास वैसे कम अवस्था का था, पर वह बड़ा ही अक़्लमंद था। वह राजनाथ के हर काम पर निगरानी रखता और उसका हिसाब माँगा करता।

इस कारण राजनाथ के अधिकार में क़दम क़दम पर अड़चनें उपस्थित होने लगीं। इस ख़तरे को भांपकर उसने अपने ससुर से शिकायत की–"आप तो देख ही रहे हैं। इधर हम धन की तंगी से परेशान हैं। इसकी वजह यह है कि घर और बाहर मेरी हुकूमत नहीं चलती।"

इस पर रंगराज ने दुखी होकर पूछा–"तब तो बताओ, मुझे क्या करना होगा?"

"यदि आप का मुझ पर विश्वास है तो आपके ज्येष्ठ पुत्र के व्यवहार कुशल होने तक आपकी संपत्ति की रक्षा करने का पूर्ण अधिकार मुझे सौंप दीजिए।" राजनाथ ने कहा।

इसी प्रकार रंगराज ने परिवार के सभी सदस्यों तथा नौकरों को बुलाकर स्पष्ट कह दिया–"आज से राजनाथ जो भी कहेगा, वह मेरा ही आदेश समझ लीजिए। उसकी आज्ञा का किसी को भी तिरस्कार नहीं करना है। अगर कोई भी उसके विरुद्ध शिकायत करेगा तो मैं उसे सुनने के पक्ष में नहीं हूँ।"

अब तो राजनाथ पर कोई बंधन न रहा। वह मनमाने ढंग से ससुर की संपत्ति साफ़ करने लगा। सब से बढ़कर जो उसके मार्ग का रोड़ा बना हुआ था, वह वीरदास था। वीरदास पर चोरी का अभियोग लगाकर राजनाथ ने उसे क़ैद करवाया। इस पर रंगराज ने आक्षेप किया तो राजनाथ ने यह प्रचार करना शुरू किया कि रंगराज पागल बन गया है। फिर क्या था, वह ससुर का धन खुले आम

लूटने लगा। थोड़े ही दिनों में उसने अपने नाम एक बहुत बड़ा महल बनवाया।

लेकिन वीरदास पर जो आरोप लगाया गया था, वह झूठा साबित हुआ। वह कारागार से मुक्त हुआ। उसने न्यायाधिकारी को राजनाथ के कुकर्मों का चिट्ठा सुनाया। यह कहा कि राजनाथ ने झूठमूठ अपने ससुर को पागल घोषित कर एक कमरे में बन्दी बनाकर रखा है। वैद्यों से इसकी जांच करा कर उनके प्रति न्याय करें। वैद्यों ने रंगराज की परीक्षा करके बताया कि वह पागल नहीं है।

इस प्रकार बंधन से मुक्त होने पर रंगराज ने अपना अधिकार वापस ले लिया और अपने बड़े दामाद को जो अधिकार दे दिया था, उसे रद्द करके छोटे दामाद वीरदास को सौंप दिया।

कई महीने गुजर गये। वीरदास ने इस अवधि में केवल राजनाथ के अत्याचारों का उद्घाटन किया। पर उसने पारिवारिक उन्नति के लिए कुछ नहीं किया।

नौकर सुस्त बन गये थे। राजनाथ ने नौकरों को अपने पक्ष में करने के लिए उनके प्रति उदारता का व्यवहार किया था। इस कारण काम में ढिलाई आ गई थी। मवेशियों की देखभाल भी ठीक से न हो पाती थी। वीरदास इस हालत में थोड़ा भी सुधार न ला सका।

वीरदास ने अपने ससुर के सामने अपनी असमर्थता व्यक्त की। इस पर रंगराज ने मुस्कुरा कर उसे समझाया–"राजनाथ दुष्ट ज़रूर था, पर समर्थ था। मगर उसके स्वार्थ ने उसकी समर्थता पर पानी फेर दिया था। तुम उसके दुर्गुणों को ढूंढ़ना छोड़ खर्च के अनुरूप आमदनी को बढ़ाने का उपाय सोचो। नये दामाद हो न! तुम्हारा दायित्व यही है!"

इसके बाद वीरदास ने राजनाथ की बात भूलकर रंगराज की संपत्ति को सही मार्ग में बढ़ाने की कोशिश की और दो साल के अन्दर पुराने वैभव और संपत्ति जुटाने में वह सफल हो सका।

जाली सिक्के

चमनलाल एक नामी व्यापारी था। राई से लेकर मोतियों तक का व्यापार करके उसने लाखों रुपये कमाये। फिर भी वह एक करोड़पति बनना चाहता था।

उन दिनों में जुआ खेलना, शराब पीना, धोखा देना ऐसे काम सर्वत्र मनमाने ढंग से हो रहे थे। यह अफ़वाह उड़ गई कि सरकारी सिक्कों के नकली सिक्के तैयार किये जा रहे हैं। चमनलाल के कानों में भी यह खबर पड़ी कि उस नगर में असली सिक्के लेकर दुगुने नकली सिक्के दे रहे हैं। उसने सोचा कि अगर ऐसा मौक़ा मिल जाय तो वह अपने लाखों सिक्कों को दुगुने बना सकता है।

एक दिन वह अपनी दूकान जा रहा था। रास्ते में उसने देखा कि कोई बुजुर्ग एक भिखारी को अपनी जेब से मुट्ठी भर सिक्के निकालकर दान दे रहा है। उसे देख चमनलाल का मन कुतूहल से भर उठा। भिखारी के चले जाने पर चमनलाल ने उसे अपना परिचय देकर उसका नाम जान लिया कि वह वर्द्धमान है।

चमनलाल ने वर्द्धमान से पूछा– "वर्द्धमानजी, क्या आप प्रति दिन मुट्ठियाँ भर कर सिक्कों का दान करते हैं?"

"आप भी चाहें तो मांगिये, आप की हैसियत के मुताबिक़ टोकरी भर सिक्के दे दूंगा।" वर्द्धमान ने जवाब दिया।

"आप इतने सारे सिक्के कैसे दे पाते पाते हैं?" चमनलाल ने पूछा।

"वे सब असली सिक्के थोड़े ही हैं? कम मूल्य की धातु पर चांदी का मुलम्मा चढ़ाये गये सिक्के हैं! जो जितने सिक्के बदल सकता है, उसे उतने सिक्के दे सकता हूँ। खूबी यह है कि इन सिक्कों और खजाने के सिक्कों का अंतर कोई जान नहीं सकता। चाहे तो आप भी बदल लीजिए!

शारदा गर्ग

मैं तब तक आप के साथ रहूँगा।" इन शब्दों के साथ वर्द्धमान ने मुट्ठी भर सिक्के चमनलाल के हाथ देकर कहा।

चमनलाल ने घबराते हुए उन सिक्कों को अपने हाथ में लिये, कपड़ों की एक दूकान में जाकर उन सिक्कों से कपड़े खरीदे! वे सिक्के बड़ी आसानी से चल गये, इस पर चमनलाल को लगा कि इन सिक्कों को बदलना बड़ा आसान है।

कपड़ों की दूकान से बाहर निकलने पर वर्द्धमान ने चमनलाल की पीठ थपथपाकर पूछा—"मैं समझता हूँ कि आप में हिम्मत आ गई है। मैं और सिक्के देता हूँ, क्या बदल सकते हैं?"

चमनलाल ने सर हिलाकर स्वीकृति दी। यह निश्चय हुआ कि चमनलाल एक सौ असली सिक्के देगा और बदले में दो सौ जाली सिक्के लेगा।

चमनलाल सिक्के लेकर वर्द्धमान के घर पहुँचा। वर्द्धमान ने चमनलाल के हाथ से सिक्के लेकर लापरवाही से उन सिक्कों को एक टोकरी में फेंक दिया। खाट के नीचे से एक पेटी खींचकर दोनों मुट्ठियाँ भरकर सिक्के ले लिये, चमनलाल के हाथ देते हुए कहा—"आप गिनकर देखिए, चार-पाँच सिक्के ज्यादा ही होंगे।"

चमनलाल ने हिसाब लगाकर देखा, चौबीस सिक्के ज्यादा थे। उन सिक्कों को अपने व्यापार के ग्राहकों के हाथ बदलने में उसे तक़लीफ़ महसूस नहीं हुई। जाली सिक्कों की वजह से उसका व्यापार भी दिन प्रति दिन बढ़ता ही गया।

इसके बाद एक दिन चमनलाल अपने दस लाख के सारे सिक्के बोरों में भरकर गाड़ी पर लादकर वर्द्धमान के घर पहुँचा।

"इतना सारा धन मेरे हाथों से बदलना उचित न होगा। मेरे गुरुजी यह काम करते हैं। चलिये, उनके पास चले चलेंगे।" वर्द्धमान ने कहा।

सिक्कोंवाले बोरों को गाड़ी पर लादे दोनों चल पड़े। दो दिन की यात्रा के

बाद वे गुरुजी के गाँव पहुँचे। वहाँ पर बड़ी आसानी से उनका काम संपन्न हुआ।

चमनलाल दुगुने सिक्कोंवाले बोरों को दो गाड़ियों पर लदवाकर वर्द्धमान के द्वारा भेजे गये चार आदमियों को साथ ले अपने नगर की ओर चल पड़ा। वर्द्धमान अपने गुरुजी के पास ही रह गया।

एक दिन की यात्रा आराम से कट गई। दूसरे दिन की यात्रा में दूर पर वर्द्धमान के अनुचरों ने राजा के सिपाहियों को देखा और चमनलाल से बोले– "सुनिये सेठजी! राजा के सिपाही चले आ रहे हैं। अच्छा यह होगा कि हम गाड़ियों को एक तरफ़ रुकवाकर इस तरह अभिनय करेंगे कि वे गाड़ियाँ हमारी नहीं हैं। सिपाहियों के चले जाने के बाद हम फिर अपनी यात्रा चालू करेंगे।"

पहले ही चमनलाल डरा हुआ था, इसलिए उसने वर्द्धमान के नौकरों की बात मान ली। राजा के सिपाहियों ने गाड़ियों को देखा, सिक्कोंवाले बोरों को टटोलकर पूछा–"ये किसके हैं?"

"हम नहीं जानते! हम तो खेतों में काम करनेवाले मजदूर हैं। ये महाशय हमको अपने खेत में काम कराने के लिए अपने साथ ले जा रहे हैं।" वर्द्धमान के नौकरों ने जवाब दिया। चमनलाल ने भी उनकी बात के समर्थन में सर हिलाया। फिर क्या था, राजा के सिपाही गाड़ियों को राजधानी की ओर हाँककर ले गये।
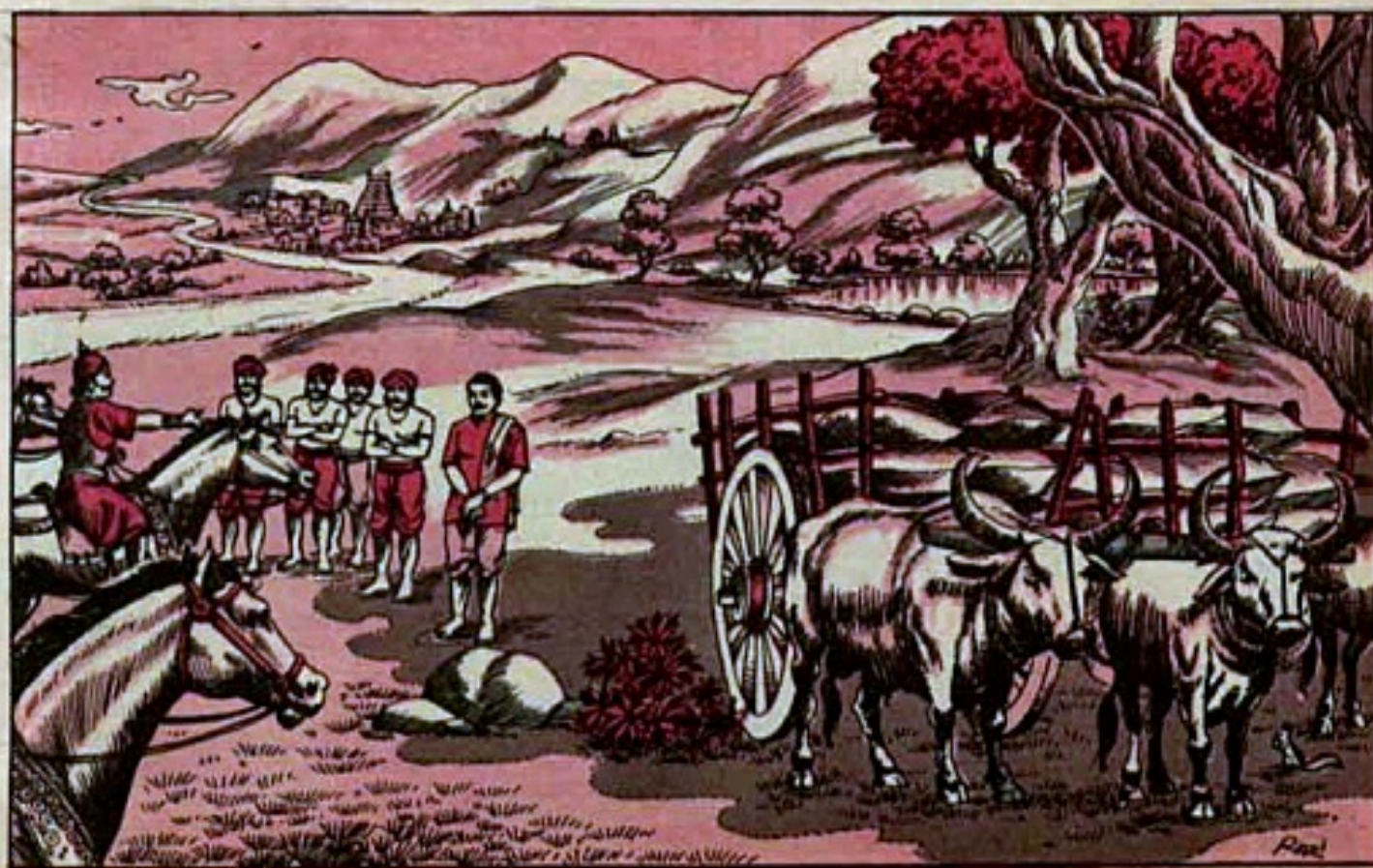
इसे देख चमनलाल का दिल बैठ गया। घर जाने पर चारपाई पकड़ ली। वह अपना सब कुछ खो बैठा था। महीने भर बाद वह अपने दुर्बल शरीर को घसीटते बाजार में गया। दूर पर उसे वर्द्धमान दिखाई पड़ा। वह तो कंगाल बन गया था।

पर वर्द्धमान की हालत बड़ी अच्छी थी।

किसी भिखारी ने लंगड़ाते आकर वर्द्धमान से दान माँगा। वर्द्धमान ने उसे मुट्ठी भर सिक्के देकर भेज दिया। भिखारी थोड़ी दूर लंगड़ाते चला गया, बाद छाती फुलाकर चलने लगा।

चमनलाल ने भिखारी को पहचान लिया। वह वर्द्धमान का ही अनुचर था। इसका मतलब है कि चमनलाल को फँसाने के लिए उसने यह नाटक रचा था।

इसके बाद वर्द्धमान भिखारी के पीछे चला गया। उसके हाथ से सारे सिक्के वापस ले लिये। वर्द्धमान के चले जाने पर चमनलाल भिखारी के पास पहुँचा। तब उसने जान लिया कि वर्द्धमान के गुरु के गाँव से उसके पीछे जो चार नौकर आये थे, उनमें से वह भी एक है। तब उसके आश्चर्य की सीमा न रही। इसका मतलब था कि राजा के सिपाहियों के वेष में वर्द्धमान के ही अनुचर आये थे।

भिखारी ने चमनलाल से धमकी भरे स्वर में कहा–"यह रहस्य तुमने कहीं प्रकट किया तो तुम्हारी इज्ज़त धूल में मिल जाएगी। हम लोग तो सभी कुकर्म करने के लिए तैयार बैठे हैं।"

"मेरी संपत्ति और मेरे बच्चों का क्या होगा?" चमनलाल ने पूछा।

"मैं थोड़ा धन क़र्ज़ में देता हूँ। कोई व्यापार कीजिए।" भिखारी ने कहा।

"असली सिक्के दोगे या जाली सिक्के?" चमनलाल ने पूछा।

उस व्यक्ति ने हँसकर उत्तर दिया–"हमारे पास असली व नकली सिक्कों का सवाल ही नहीं उठता। सारे के सारे असली ही सिक्के हैं।"

अनाज की क़ीमत

एक गाँव में रघुनंदन नामक एक जमीन्दार था। उसने अपने गाँव में ऐसा बढ़िया महल बनवाया जो केवल नगरों में ही देखा जा सकता था। उस महल को देखने आस-पास के गाँव के लोग आया करते थे।

जमीन्दार के खेतों में जो अनाज होता था, उसे गोदाम में रखवा देता। नौकरों तथा गरीबों को वह खुद अनाज माप कर देता और गोदाम में स्वयं ताला लगाया करता था।

एक दिन पड़ोसी गाँव से तीन आदमी रघुनंदन के महल को देखने आये। उस वक़्त रघुनंदन ने अपने मजदूरों तथा गरीबों को अनाज माप करके दे दिया और नीचे छितर गये दानों को सावधानी से चुनकर अनाज के गोदाम में डाल रहा था। इसे देख तीनों में से एक ने मजाक़ करते हुए पूछा–"आप तो अनाज के दानों को सोने के सिक्कों जैसे चुन रहे हैं?"

इसके बाद रघुनंदन ने उन तीनों को अपने घर खाना खाने के लिए निमंत्रण दिया, तरह-तरह के पकवान बनवाये। उनकी गंध से सब के मुँह में पानी भर आया। इसके बाद रघुनंदन उन्हें खाने के लिए ले गये। रसोइन ने उनके सामने पत्तलों में सोने के ढेले परोस दिये।

रघुनंदन ने कहा–"अनाज से भी क़ीमती यह सोना आप लोग खाइए!" फिर क्या था, उन लोगों ने अपनी भूल जान ली, तब रघुनंदन से क्षमा मांगी। बाद दावत खाकर अपने घर चले गये।

अपराध का दण्ड

काशी नगर में एक जमाने में कमलगुप्त नामक एक धनी व्यापारी था। उसकी पुत्री पद्मिनी अत्यंत रूपवती थी। वह बड़ी सुशीला मानी जाती थी। कमलगुप्त ने खोज-ढूंढ़कर चन्द्रगुप्त नामक युवक को चुन लिया और उसके साथ पद्मिनी का विवाह करके अपने घर जमाई दामाद बनाया। कालांतर में उसने अपना सारा व्यापार दामाद के हाथ सौंप दिया।

पद्मिनी चन्द्रगुप्त को चाहती न थी। वह प्रकट रूप में अभिनय करते गुप्त रूप से स्वेच्छापूर्वक विचरण करती थी। थोड़े समय बाद उसे एक पुत्र हुआ, इस पर पद्मिनी अपने पुत्र का स्पर्श करने से इनकार करते हुए बोली–"यह शिशु मेरा पुत्र भले ही हो, पर यह भी तो पराया पुरुष है। मैं इसे कैसे छू सकती हूँ? भले ही लोग बुरा क्यों न माने?"

लोगों ने सोचा–"ओह! पद्मिनी कैसी उत्तम पतिव्रता है।"

एक दिन चन्द्रगुप्त अपनी दूकान में बैठा हुआ था। उस वक़्त सर्वत्र पवित्र जल छिड़कते हुए रास्ते पर चलनेवाला एक ब्राह्मण युवक उसे दिखाई पड़ा। वह देखने में बड़ा ही सुंदर था। वह ऐसा लगता था कि वह अत्यंत ही उत्तम चरित्रवाला और पवित्र है।

उस वक़्त चन्द्रगुप्त गेहूँ माप रहा था। गेहूँ में से एक सूखा तिनका उड़कर ब्राह्मण की चोटी पर जा गिरा, इस पर चन्द्रगुप्त दुखी हो उसे हटाने को हुआ।

मगर ब्राह्मण युवक ने चन्द्रगुप्त को रोकते हुए कहा–"ठहरो! मैं अभी अपना सिर काट लेता हूँ। मैंने आज तक कोई पाप नहीं किया है। इस वक़्त मेरे प्रति अपचार हुआ है।"

अनुपमा सोबती

चन्द्रगुप्त के समझाने पर उस युवक ने अपना विचार बदल लिया। इस पर उस युवक के प्रति चन्द्रगुप्त के मन में अत्यंत श्रद्धा और भक्ति पैदा हुई। उसने ब्राह्मण युवक से विनती की कि वह थोड़े समय तक चन्द्रगुप्त के घर रहकर उन्हें पावन बना दे। ब्राह्मण युवक ने मान लिया।

थोड़े दिन बाद चन्द्रगुप्त के मन में यह विचार आया कि स्वास्थ्य के रहते जो कुछ कमाया जा सकता है, कमाकर संग्रह करना चाहिए। इस विचार के आते ही चन्द्रगुप्त ने अपने परिवार की जिम्मेदारी ब्राह्मण युवक को सौंप दिया और व्यापार करने चल पड़ा। आखिर वह पाटलीपुत्र की ओर चल पड़ा।

चन्द्रगुप्त ने अपना आखिरी पड़ाव पाटलीपुत्र के समीप में एक वन में डाला। वहाँ पर एक वृक्ष पर एक पक्षी निश्चल बैठा रहा। अन्य पक्षी जब आहार की खोज में चल पड़े, तब उस पक्षी ने अन्य पक्षियों के घोसलों में प्रवेश करके सारे अण्डे खा डाले और पूर्ववत् अपनी जगह आकर निश्चल बैठा रहा।

चन्द्रगुप्त ने सोचा–"यह कैसा दुष्ट पक्षी है! क्या इसके अपराध का कोई दण्ड नहीं है?"

इतने में ही एक बहेलिये ने उस पक्षी को अपने तीर से मार गिराया। इस घटना को देखने पर चन्द्रगुप्त का मन प्रसन्न हो उठा। उसने सोचा कि उसे उसके

कुकर्म का फल मिल गया है। और वह समीप में स्थित एक आश्रम की ओर चल पड़ा। वहाँ पर एक मुनि ध्यान मग्न था।

उस समय एक नारी जो अनेक आभूषण धारण किये हुए थी, मुनि के सामने पहुँचकर साष्टांग दण्डवत करने लगी। मुनि ने झट से छुरी निकाली, उस नारी की पीठ में भोंककर उसे मार डाला और उसके सारे गहने उतारकर छिपा दिया। दूर से चन्द्रगुप्त यह दृश्य देख रहा था, पर मुनि का ध्यान उस ओर न गया। पर इस दृश्य को देखने पर चन्द्रगुप्त का मन और विकल हो उठा।

उसी वक़्त राजा के सिपाहियों ने प्रवेश करके मुनि तथा उसके द्वारा हत्या की गई युवती की लाश को बरामद किया। तब जाकर चन्द्रगुप्त ने सोचा कि इस दुनिया से न्याय और धर्म लुप्त नहीं हो गया है। उसका मन थोड़ा शांत हुआ। उसने अपने मन में यही सोचा कि महा पतिव्रता उसकी पत्नी पद्मिनी तथा महा पुरुष ब्राह्मण युवक जैसे लोगों के जीवित रहने के कारण ही दुनिया में आज तक धर्म का बोलबोला है।

इसके बाद चन्द्रगुप्त ने शीघ्र ही अपना माल बेच डाला। घर की याद बराबर सताने की वजह से रास्ते में कहीं पड़ाव डाले बिना यात्रा चालू करके आधी रात को घर पहुँचा। उसने अपने शयन कक्ष तक पहुँचकर खिड़की में से भीतर झांका, एक ही बिस्तर पर उसकी पत्नी और ब्राह्मण युवक को सोते हुए उसने देखा।

"भगवान! यह कैसा अन्याय है?" चन्द्रगुप्त का दिल चीख उठा। उसी समय छत पर से एक नाग आकर उन पर गिर पड़ा। दोनों ने उसे नींद की खुमारी में हटाया। नाग दोनों को काटकर कहीं चला गया। निद्रा की हालत में ही वे दोनों मर गये।

चन्द्रगुप्त ने इस दृश्य को देख अपने मन में सोचा—"शायद इस प्रकार भगवान अपराधों के लिए दण्ड देता है।"

कृतज्ञता

एक नगर में जयशेखर नामक एक धनी था। उसकी पत्नी का नाम जयप्रदा था। उस दंपति के कोई संतान न थी। संतान पाने के वास्ते उन दोनों ने अनेक जप, तप और व्रत किये, पर उन्हें जब कोई संतान न हुई तब आखिर वे तीर्थ यात्रा पर चल पड़े।

तीर्थाटन समाप्त कर जब वे अपने घर लौट रहे थे, तब एक जंगल में डाकुओं के दल ने उन्हें घेर लिया। जयशेखर के अनुचर डाकुओं को देख डर के मारे भाग खड़े हुए। डाकुओं ने जयशेखर और उसकी पत्नी के आभूषण व धन को लूट लिया।

उसी वक़्त कुछ डाकू जयप्रदा की सुंदरता पर मुग्ध हुए। उन लोगों ने जयप्रदा का अपमान करना चाहा। इस पर डाकुओं के सरदार ने उन्हें रोकते हुए डांटा–"मैंने तुम लोगों को कितनी बार समझाया था कि औरतों के साथ अत्याचार नहीं करने चाहिए? हमें सिर्फ़ धन चाहिए। इसी के वास्ते तो हम लोग अपने प्राण व इज्जत की परवाह किये बिना इस जंगल में भटकते हुए राहगीरों को लूट रहे हैं। हमें जो धन मिला है, इससे संतुष्ट हो जाओ। आइंदा फिर कभी इस प्रकार धृष्टता करने की कोशिश की तो तुम्हारा सर कटवा दूंगा।"

इस प्रकार अपनी इज्जत बचाकर जयप्रदा डाकुओं के सरदार से बोली–"भाई, तुम लोगों ने हमारी सारी संपत्ति लूट ली, फिर भी मैं तुम्हारे ऋण से मुक्त न हुई। मैं कभी न कभी वह ऋण चुका दूंगी।"

इसके बाद जयशेखर और जयप्रदा बड़ी मुसीबतें झेलकर अपने नगर को लौट आये।

जयराम सिंह

थोड़े दिन बाद डाकुओं का सरदार किसी काम से उसी नगर में आया जिस नगर के जयशेखर व जयप्रदा निवासी थे। राजा के सिपाही अनेक दिनों से उसे पकड़कर राजा के हाथ सौंपकर इनाम पाने की खोज में थे। इस बार उस डाकू को सिपाहियों ने पहचान लिया और उसका पीछा किया।

डाकुओं का सरदार सिपाहियों की आँखों में धूल झोंककर एक बड़े मकान के भीतर घुस गया। संयोग से वह मकान और किसी का न था, जयशेखर का था। जयशेखर ने डाकुओं के सरदार को पहचान लिया। एक दिन उसी ने अपने दल के साथ आकर जयशेखर की संपत्ति लूट ली थी। उसका बदला लेने की इच्छा से जयशेखर को मीठी बातों में फँसा दिया, एक अंधेरी कोठी में उसे भेजकर बाहर से ताला लगाया, तब राजा को यह सूचना देने घर से निकल पड़ा। उसका विचार था कि डाकू को पकड़वाने से राजा जो इनाम देंगे, उस रक़म से उसकी लुटी हुई संपत्ति कुछ हद तक पूरी हो जाएगी। जयशेखर की पत्नी जयप्रदा ने भी डाकू को पहचान लिया। फिर भी वह इस तरह अभिनय करने लगी, मानो उसने डाकू को पहचाना नहीं। ज्यों ही जयशेखर घर से बाहर निकला, त्यों ही जयप्रदा ने डाकू को अंधेरी कोठी से मुक्त करके बताया— "भैया, तुमने एक बार मेरी इज़्ज़त बचाई। आज मैं तुम्हारे प्राण बचाकर अपना ऋण चुका रही हूँ। जाओ, आइंदा सावधान रहो।"

डाकू की आँखों में पानी भर आये। उसने कृतज्ञता पूर्वक जयप्रदा के चरणों में प्रणाम किया और वहाँ से चला गया। उसने समझ लिया कि धन से भी बढ़कर ज़िंदगी में बड़ी चीज़ें ईमानदारी, कृतज्ञता जैसी कई हैं। उस दिन से डाकू ने चोरी करना बंद किया और मेहनत करके जीने की आदत डाल ली।

रामचन्द्रजी के शासनकाल में उत्तरी दिशा में गंधर्वों ने हमला करके जनता को सताना शुरू किया। भरत ने भारी सेना के साथ उनका सामना करके युद्ध में उन्हें पराजित किया, गंधर्वों के आतंक से मुक्त हो जनता सुखी रही।
इसके थोड़े दिन बाद उत्तर-पश्चिमी दिशा में लवणासुर नामक राक्षस ने उत्पात मचाना प्रारंभ किया, श्रीरामचन्द्र ने शत्रुघ्न को दिव्य अस्त्र देकर लवणासुर का वध करने भेजा। यह सोचकर कि शत्रुघ्न की मदद के लिए राक्षसों की मायाओं की प्रतिक्रियाएँ बतानेवाला विभीषण भी साथ में हो तो उत्तम होगा, रामचन्द्रजी ने विभीवण को बुला लाने के हेतु लंका में हनुमान को भेजा। लंका से विभीषण राक्षस वीरों को साथ ले आ पहुँचा। इस पर शत्रुघ्न अपनी सेनाओं के साथ राक्षस सेना को मिलाकर विभीषण को साथ ले लवणासुर पर आक्रमण करने निकल पड़ा।

शत्रुघ्न ने सुदर्शन चक्रायुध की भांति आगे बढ़कर लवणासुर की सेनाओं को आहत किया। उस भयंकर संग्राम में विभीषण की राक्षस सेना ने भी अपूर्व पराक्रम का परिचय दिया। शत्रुघ्न ने लवणासुर के साथ भीषण युद्ध करके उसका संहार किया। विजय प्राप्त करके शत्रुघ्न तथा विभीषण अपनी सेनाओं के साथ अयोध्या लौट आये।

४०. शतकंठ रावण का संहार

एक दिन श्रीरामचन्द्रजी अपने सिंहासन पर विराजमान थे। बायीं दिशा में सीताजी बैठी थीं, रामचन्द्रजी के आगे हनुमान बैठा था। उस सभा में भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, सुग्रीव, अंगद, नल, नील, जांबवान, विभीषण, वसिष्ठ, वासुदेव आदि अपने अपने आसनों पर विराजमान थे।

उस वक़्त महामुनि अगस्त्य सभा में पधारे। रामचन्द्रजी ने हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम किया, अतिथि-सत्कार करके उनका कुशल-क्षेम पूछा।

इस पर अगस्त्य ने बताया–"दुष्टों को दण्ड तथा शिष्ट जनों की रक्षा करनेवाले तुम्हारे रहते हम कुशल क्यों न होंगे, राम? तुमने दशकंठ रावण का वध करके बड़ा यश प्राप्त किया है, यह बात सच है! पर तिक्त समुद्र के उस पार मायानगर को अपनी राजधानी बनाकर शतकंठ नामक राक्षस शासन कर रहा है। वह तुम्हारा वध करने का विचार रखता है।"

रामचन्द्रजी ने विस्मय में आकर पूछा–"महामुनि, उस राक्षस का वृत्तांत सुनाइये।"

अगस्त्य ने यों कहा–"कश्यप के वसु नामक पत्नी थी। असुर संध्या के समय गर्भवती हो उसने अत्यंत विकृत आकृतिवाले शतकंठ का जन्म दिया। उसने ब्रह्मदेव के प्रति घोर तपस्या की, ब्रह्मदेव ने प्रसन्न होकर शतकंठ को दर्शन देकर इन्द्रादि देवताओं के लिए असाध्य वर दिये। इस पर वह घमण्ड में आकर तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने की सोच रहा है। इसलिए हे रामचन्द्र! तुम्हें युद्ध में उसका वध करना होगा।"

रामचन्द्रजी ने थोड़ी देर सोचकर पूछा–"वह देखने में कैसे लगता है?"

"वह चाहे जैसे भी हो, तुम्हारे बाणों के लिए असाध्य कुछ नहीं है न? रावण से दस गुने अधिक प्रताप और भीकर स्वरवाला है! उसका वध कैसे करना है, यह बात क्या तुम्हें किसी को कहने की आवश्यकता है?" अगस्त्य ने उत्तर दिया।

अगस्त्य के चले जाने पर रामचन्द्रजी ने अपने भाइयों से कहा–"युद्ध में रावण, कुंभकर्ण आदि राक्षसों का वध करके मैं थका हुआ हूँ। लक्ष्मण भी मेरी भांति थका हुआ है। भरत गंधर्वों के साथ, शत्रुघ्न लवणासुर के साथ युद्ध करके थके हुए हैं। कहीं समुद्रों के पार रहनेवाले शतकंठ का वध करने के लिए हम किसको नियुक्त करेंगे? सौ योजनवाले समुद्र को पार करना ही बड़ा कष्ट साध्य है!" यों कहकर रामचन्द्रजी चिंता में डूब गये।

इतने में रामचन्द्र की दृष्टि अपने सामने बैठे हनुमान पर पड़ी। उसी क्षण वे बोले–"वीर हनुमान! यह काम तुम्हारे द्वारा ही संभव है। तुम एकपाद रुद्र हो, पर ऐसे बैठे हुए हो, मानो कुछ जानते ही न हो?"

हनुमान ने रामचन्द्रजी से कहा–"आप के सामने ये राक्षस कहाँ टिक सकते हैं? आप मुझ पर सवार होकर उस राक्षस के द्वीप में पहुँचकर उसका वध कर डालिए!"

रामचन्द्रजी ने हनुमान के साथ आलिंगन करके उसकी प्रशंसा की–"तुम्हारे शौर्य और पराक्रम और किसे प्राप्त हैं?"

ये सारी बातें सुननेवाली सीताजी ने रामचन्द्रजी से पूछा–"आप ने हनुमान को एकपाद रुद्र बताया। रुद्र को वानर का रूप धारण करने का क्या कारण था?"

इसके उत्तर में रामचन्द्रजी ने यों कहा: ब्रह्माण्ड पर शासन करनेवाले एकपाद रुद्र जिनका महारुद्रगुण सेवन करते रहते हैं, एक बार अपने ध्यान के बल पर महाविष्णु के स्वरूप को देखा। उन्होंने सोचा कि कभी दिखाई न देनेवाला यह रूप उनकी रक्षा करनेवाले ईश्वर का ही होगा। फिर क्या था, वह उसी वक़्त वहाँ से निकल पड़ा, समस्त विश्व का भ्रमण करके पृथ्वी लोक में पहुँच कर शिवजी में विलीन हो गया। उस शिवजी के अंश में हनुमान का जन्म हुआ है।

इसके बाद रामचन्द्रजी शतकंठ के साथ युद्ध के लिए सन्नद्ध हो गये। सीताजी ने भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, विभीषण और सेना भी युद्ध के लिए निकल पड़ी। रामचन्द्रजी ने हनुमान का पता लगाना चाहा। वह विश्वरूप धारण कर पृथ्वी, आकाश और समस्त दिशाओं में व्याप्त हो दिखाई दिया। उसके संपूर्ण रूप को देखना किसी के लिए भी संभव न हुआ। उसके रूप को देख सब लोग विस्मय में आ गये।

इसके बाद हनुमान पृथ्वी की ओर झुक गया। उसकी पीठ पर रामचन्द्रजी ने सीताजी को चढ़ाया और वे भी सवार हुए। तदुपरांत अपने साथ चलनेवाले वानर एवं राक्षस सैनिकों को चढ़ने का आदेश दिया। उन लोगों ने आराम से हनुमान की पीठ पर आकाशयात्रा की। आकाश में जानेवाला हनुमान उड़नेवाले मेरु पर्वत की भांति दिखाई दिया।

हनुमान जब चार समुद्रों के ऊपर से उड़ा जा रहा था, तब रामचन्द्रजी ने सीताजी को एक एक करके सारे समुद्र दिखाये। अंत में शतकंठ का मायानगर दिखाई पड़ा। उस नगर के चर्तुदिक सोने का प्राकार था। हनुमान के अतिरिक्त किसी को भी उन समुद्रों को लांघना संभव न था।

माया नगर में नंदनवन की समता कर सकेनेवाला एक उद्यान था। रामचन्द्रजी ने हनुमान को वहाँ पर उतार देने का आदेश दिया। सेनाएँ भी वहीं उतर गईं। तब रामचन्द्रजी ने सुग्रीव आदि से कहा– "तुम लोग राक्षस के साथ युद्ध करने के लिए चले जाओ।"

उसी समय सुग्रीव, अंगद, विभीषण आदि महावीर अपनी सेनाओं के साथ शतकंठ के नगर पर हमला करने निकल पड़े। वानर और राक्षस सेना ने मिलकर दुर्ग के चर्तुदिक के कंदक को भर दिया।

दुर्ग की दीवारों को तोड़ डाला। गोपुरों को धराशायी किया और दुर्ग के द्वारों को भी तोड़ दिया। उस दुर्ग की रक्षा करनेवाले काल-केय नामक राक्षसों को वानर और राक्षसों के द्वारा किये जाने हमले को देख आश्चर्य हुआ। उन लोगों ने सिंहनाद करके अपने मन में सोचा—"क्या ये लोग नहीं जानते कि इस नगर पर शतकंठ शासन करते हैं? ये लोग अपने प्राणों के साथ कैसे बचना चाहते हैं?"

इसके बाद काल-केयों ने तरह-तरह के आयुध धारण कर वानर और राक्षस सेना पर धावा बोल दिया। उनके वारों से घबरा कर वानर सेना तितर-बितर हो गई। विभीषण ने वानरों को रोक कर राक्षस सेना को उकसाया। सबने एक साथ काल-केयों का सामना किया। युद्ध तीव्रतर होता गया।

उस वक़्त शतकंठ शिवजी की पूजा कर रहा था, युद्ध का कोलाहल सुनकर द्वारपालों से उसने पूछा—"यह कैसा कोलाहल है?"

द्वारपालों ने शतकंठ को प्रणाम करके कहा—"महाप्रभु! कोई राजा बन्दर पर सवार हो कहीं से नर-वानर और राक्षस सेना सहित हमारे द्वीप में आ उतरे हैं। हमारे काल-केय उनके साथ युद्ध कर रहे हैं। यह उसी का कोलाहल है।"

"अरे, कोई यह बात सुने कि कोई राजा बन्दर पर सवार हो वानर सेना के
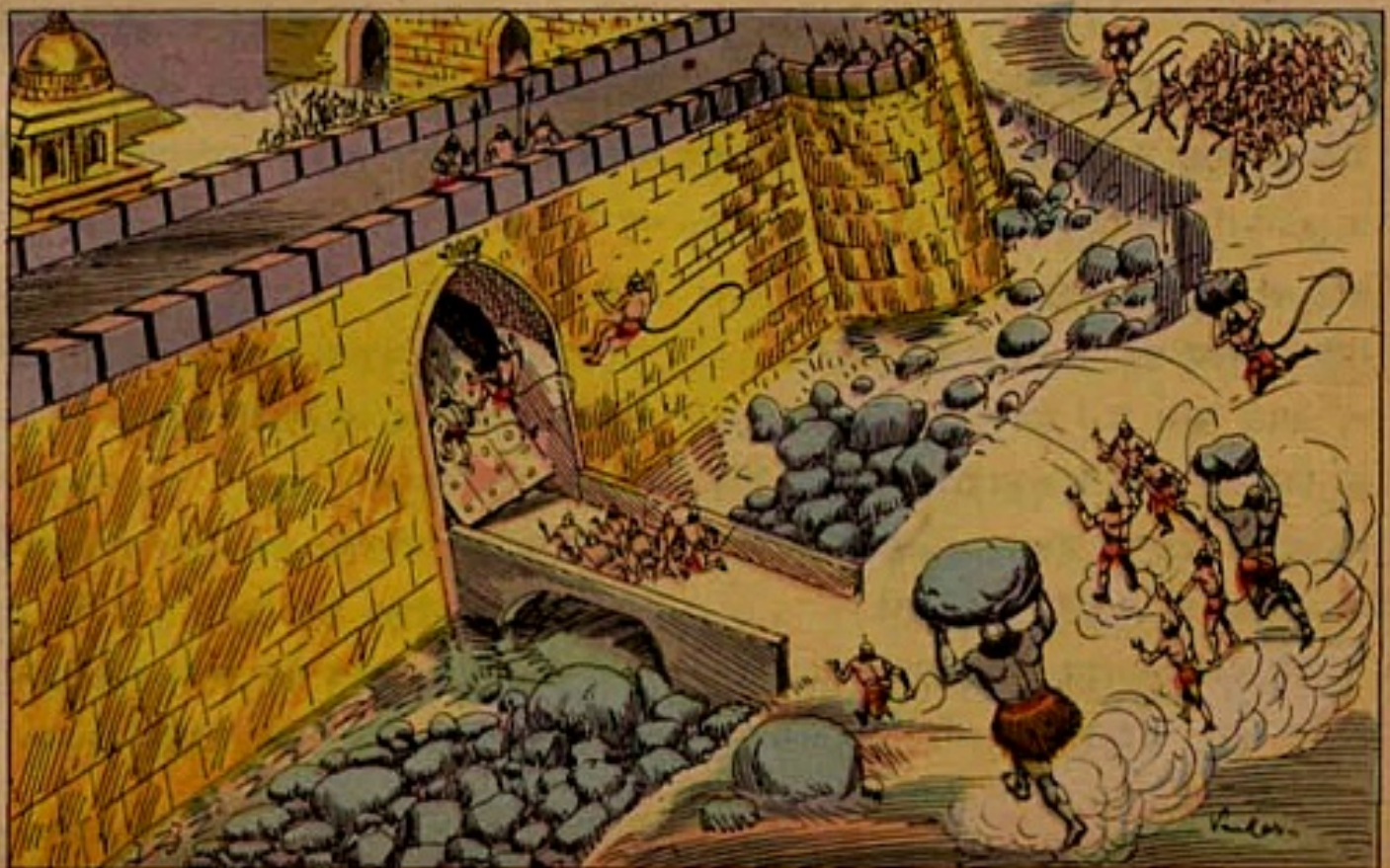
राक्षस को देख आश्चर्य चकित क्यों हैं? आप के प्रताप के सामने यह क्या चीज़ है? इसका आप वध कर डालिए।" ये शब्द कहकर वह सीधे शतकंठ के सामने चला गया और उसके वक्ष पर मुक्के का प्रहार किया।

चोट खाकर शतकंठ नीचे गिर पड़ा। तुरंत उठकर सामने स्थित हनुमान को देख बोला-"अरे, तुम कैसी ताक़त रखते हो? हे वानर! तीनों लोकों को कंपा देनेवाले मुझे तुमने एक मुक्के के प्रहार से गिरा दिया? मैंने अनेक देवताओं को युद्ध में हराया, मगर किसी ने आज तक मुझे इस तरह नीचे नहीं गिराया। मैंने तुम्हारे मुक्के के प्रहार को देखा, अब तुम मेरे शूल का वार तो देखो!" यों अपने पराक्रम का परिचय देते हुए अपने से भी लंबे शूल को पूरी ताक़त लगाकर हनुमान पर फेंक दिया, पर उसे हनुमान ने तोड़ डाला।

"शबाश!" कहते शतकंठ ने हनुमान पर क्रमशः मूसल, कुल्हाड़ी, खड्ग वगैरह आयुधों का प्रयोग किया। उन सबको हनुमान ने तोड़ डाला। इस पर रामचन्द्रजी हनुमान के पराक्रम पर प्रसन्न हुए और वे स्वयं एक धनुष धारण कर शतकंठ के साथ युद्ध करने लगे। राम के साथ विभीषण

साथ मेरे नगर पर हमला कर बैठे हैं तो क्या हँस नहीं पड़ेंगे? देवता तक मेरे सामने माथा टेकते हैं, ऐसी हालत में यह राजा यहाँ तक वानर सेना को लेकर कैसे आ गया है?" ये शब्द कहकर शतकंठ ने अपने मंत्री वगैरह को युद्ध के लिए सन्नद्ध होने का आदेश दिया, रणभेरी बजवा कर युद्ध के लिए वह भी स्वयं तैयार हो गया।

अपने साथ युद्ध करने आये हुए शतकंठ का किरीट, उसके अलंकारों की कांति, तेज शरीर, व मद को देख रामचन्द्रजी विस्मय में आकर उसे देखते ही रह गये!

इसे देख हनुमान रामचन्द्रजी को सचेत करते हुए बोला-"स्वामी! आप उस

भी आगे आया। शतकंठ ने उन दोनों के बाणों को बीच में ही तोड़कर उनको लात मारकर लंका में गिरा दिया।

उस वक़्त हनुमान ने अपनी पूंछ को इस तरह बढ़ाया, जैसे चारों समुद्रों के ऊपर से सेतु का निर्माण किया गया हो। तब रामचन्द्रजी और विभीषण उस सेतु पर चलकर पुनः आ पहुँचे। उन दोनों ने ज्यों ही पुनः शतकंठ के साथ युद्ध प्रारंभ किया, त्यों ही वानर सेना ने शतकंठ पर पेड़ और पत्थरों की वर्षा की। शतकंठ अपने अस्त्रों के द्वारा उन सब को चूर्ण करता गया। उसके वार से तंग आकर अंगद, नील, नल, ऋक्षज जैसे महान वानर वीर भी भाग खड़े हुए। रामचन्द्रजी के तीनों भाई भी युद्ध में हार गये।

उस वक़्त रामचन्द्रजी सीताजी समेत हनुमान पर सवार हो शतकंठ के साथ युद्ध करने आये। शतकंठ ने कहा—"हे मानव! क्या तुम मेरे साथ युद्ध करने का मतलब रावण के साथ युद्ध करने के बराबर समझते हो? आखिर तुम इस बंदर पर सवार हो इतनी दूर आये ही क्यों? तिस पर भी सीताजी को भी अपने साथ क्यों ले आये हो?"

रामचन्द्रजी ने कुपित हो उस पर अस्त्रों की वर्षा की। तब रामचन्द्रजी को लगा

कि शतकंठ करोड़ों की संख्या में उनके सामने उपस्थित है। रामचन्द्रजी के सारे महान अस्त्र व्यर्थ हो गये।

इस पर हनुमान को अपार क्रोध आया। उसने अपनी प्रचण्ड शक्ति के द्वारा शतकंठ की राक्षस सेना का नाश करना शुरू किया। तब तक युद्ध करनेवाले रामचन्द्रजी ने मानो विश्राम करने के हेतु अपने धनुष और दो तरकसों को भी सीताजी के हाथ सौंप दिया। सीताजी ने उन अस्त्रों को ग्रहण कर शतकंठ के साथ युद्ध किया। शतकंठ भी कुपित हुआ और सीताजी पर अपना सारा पराक्रम प्रकट करते हुए युद्ध करने लगा।

सीताजी ने यों स्मरण करके–'यदि रामचन्द्रजी सत्य का पालन करनेवाले हैं और मैं पतिव्रता हूँ, तो इस बाण के साथ यह राक्षस मर जाय!' धनुष पर बाण चढ़ाकर शतकंठ पर छोड़ दिया। फिर क्या था, शतकंठ प्राण खोकर नीचे गिर पड़ा। सीताजी ने अपने हाथ के धनुष और बाण रामचन्द्रजी को सौंपकर उन्हें प्रणाम किया।

रामचन्द्रजी ने प्रसन्न होकर अपना रत्नहार सीताजी के हाथ दिया। सीताजी ने कहा–"आप की सेनाओं को अपनी पीठ पर लादकर ले आनेवाले तथा असंख्य राक्षसों का वध करके शतकंठ रावण की मृत्यु का कारण बननेवाले हनुमान को ही आप यह रत्नहार सौप दीजिएगा।" इसके बाद हनुमान रामचन्द्रजी के हाथ से वह रत्नहार ग्रहण कर अपने कंठ में धारण कर परमानंदित हुआ। तब बोला–"श्री सीता-रामचन्द्र द्वारा प्रदान किया गया यह हार सदा मेरे वक्षस्थल पर प्रकाशमान होते हुए मेरे हृदय के भीतर सीताजी-रामचन्द्रजी को शाश्वत रूप से प्रतिष्ठित करेगा।"

युद्ध समाप्ति पर सभी लोग अयोध्या लौट आये। रामचन्द्रजी से अनुमति लेकर विभीषण राक्षस सेना के साथ लंका को लौट गया। सुग्रीव आदि वानर किष्किधा को चले गये। पर हनुमान रामचन्द्रजी के पास ही रह गया।

शतकंठ रावण के वध के बाद रामचन्द्र आदर्शपूर्वक शासन कार्य संभालने लगे। राम राज्य में शोक, क्रोध, बुढ़ापा, वैर, लोभ और संक्षोभ नामक कोई चीज़ न थी। जनता इन बातों को जानती तक न थी।

रामचन्द्रजी की सेवा में रहनेवाले हनुमान के मन में थोड़े समय बाद अपनी माता अंजना देवी को देखने की इच्छा हुई। इस पर हनुमान रामचन्द्रजी की अनुमति लेकर गंदमादन पर्वत पर रहनेवाली अपनी माता अंजना देवी के आश्रम की ओर चल पड़ा।
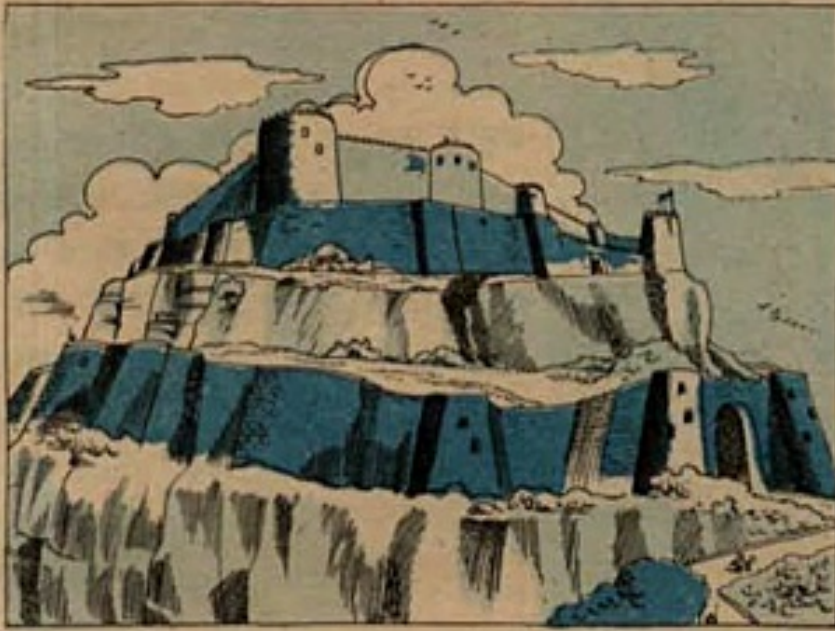
असीर गढ़ की रक्षा

खान देश का असीरगढ़ दुर्ग सारे देश में मजबूत था। कुछ लोगों का विचार है कि सारे संसार में ऐसा मजबूत दुर्ग दूसरा नहीं है। १०० फुट की ऊँचाईवाले पहाड़ पर स्थित वह दुर्ग शत्रु के लिए दुर्भेद्य है।

कहा जाता है कि एक बार एक सैनिक उस प्रदेश से गुजर रहा था। उस वक्त एक कुत्ते ने एक हिरण का पीछा करना चाहा, तब हिरण ने उसका सामना करके कुत्ते को भगाया। इस पर उस सैनिक ने सोचा–'यह स्थान अत्यंत साहसपूर्ण है। मैं यहीं पर अपना स्थिर निवास बना लूंगा।'

उसी सैनिक के पोते ने खान देश की स्थापना करने के लिए वहाँ के जमीन्दारों को युद्धों में पराजित किया। उसी ने उस दुर्भेद्य असीर गढ़ दुर्ग का निर्माण किया।

असीर गढ़ पर आकृष्ट हो अकबर बड़ी सेना के साथ वहाँ पहुँचा। अकबर के सैनिकों ने दुर्ग के चारों तरफ़ कंदक बनाये, तब उसने उस दुर्ग के अधिपति बहादूर शाह को अपनी अधीनता स्वीकार करने का संदेशा भेजा।

बहादूर शाह स्वभाव से कायर था। मगर दुर्गपालक मालिक याकूब ने जो अबिसीनिया का निवासी था, अपने बादशाह से कहा—"मालिक! अकबर हमेशा के लिए यहीं पर बैठे नहीं रह सकते। हम दुर्ग की रक्षा के लिए उनसे लड़ेंगे। एक साल बाद ही सही दुश्मन को यहाँ से जाना ही पड़ेगा।"
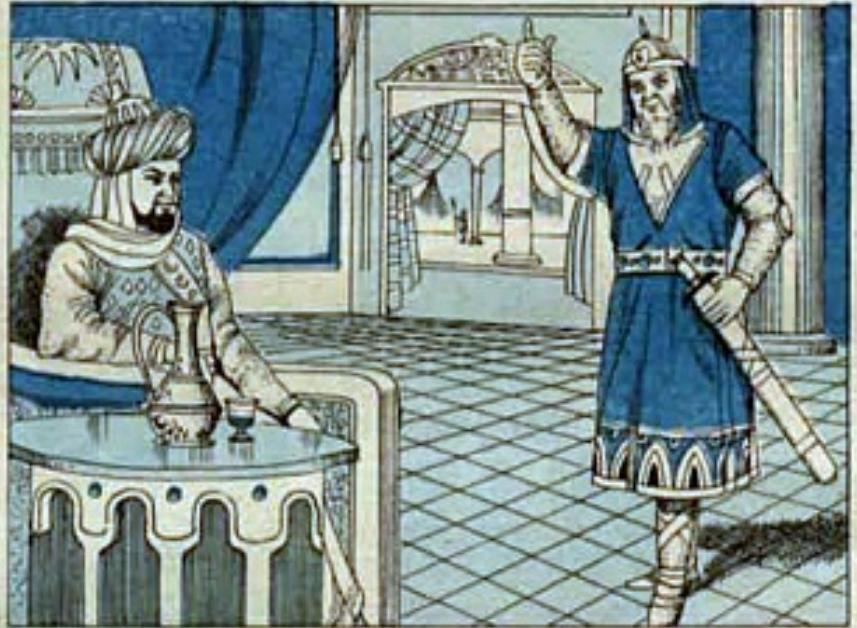
दुर्ग में कुल मिलाकर पचास हजार लोग थे। उन लोगों ने तीन हजार तोपों को मुगल सैनिकों पर दाग दिया। याकूब ने युद्ध का संचालन किया।

दुर्ग में कई सालों के लिए आवश्यक रसद थी। याकूब ने बहादूर शाह को आत्म समर्पण करने से मना किया था। पर बहादूर शाह की हिम्मत न पड़ी। एक दिन बहादूर शाह याकूब के पुत्रों–मुकराब तथा बहादूर खाँ–को साथ लेकर पहाड़ पर से उतर आया और उसने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

अकबर ने बहादूर शाह को अपने अधीन रखकर मुकराब द्वारा याकूब के पास ख़बर भेज दी कि अगर वह दुर्ग को अपने अधीन कर दे तो वह उसे क्षमा कर देगा। मुकराब ने जब यह बात याकूब से बताई तब याकूब ने कहा–"तुम कायर हो, अपना चेहरा मुझे मत दिखाओ।"

इस पर मुकराब अकबर और बहादूर शाह के पास लौट आया। अकबर यह सोचकर खुश हुआ कि मुकराब खुश ख़बरी लाया है। मगर मुकराब ने छुरी लेकर अपनी छाती में भोंक ली और इस तरह अपनी आत्महत्या कर ली।
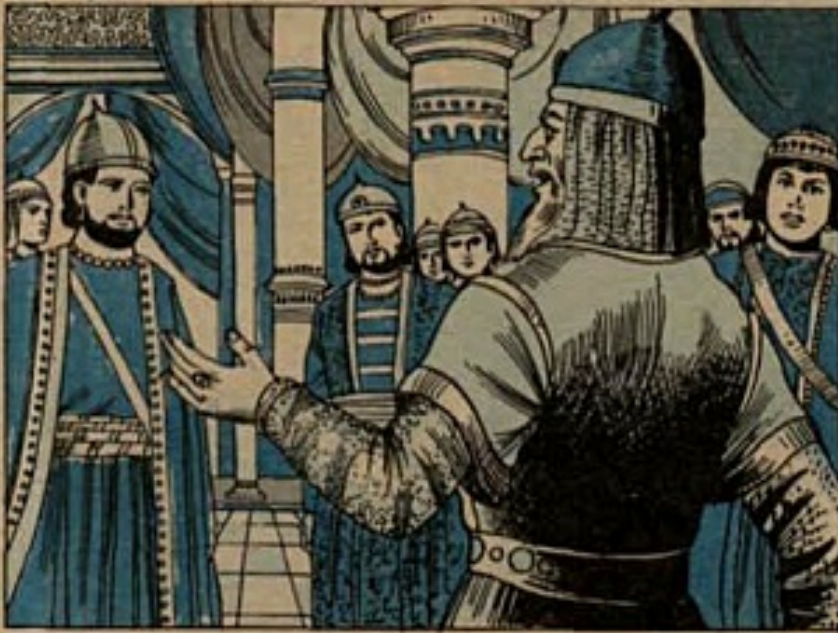
दुग में बादशाह के शहजादे थे बहादूर शाह ने आत्म समर्पण कर लिया था, इसलिए याकूब ने शाहजादों को बुलाकर कहा—"तुम में से जो व्यक्ति लड़ाई जारी करेगा, गद्दी उसी की होगी।" पर सातों में से एक ने भी कोई जवाब न दिया।

धीरे धीरे असीरगढ़ के सभी अधिकारी मुगलों के पक्ष में चले गये। याकूब जनता था कि कायर लोग कभी दुर्ग की रक्षा नहीं, कर सकते। उसने अपने लिए एक गड्ढ़ा खोद लिया, अपने निकट बंधुओं तथा आप्त व्यक्तियों से विदा लेकर ज़हर पीकर जान दे दी।
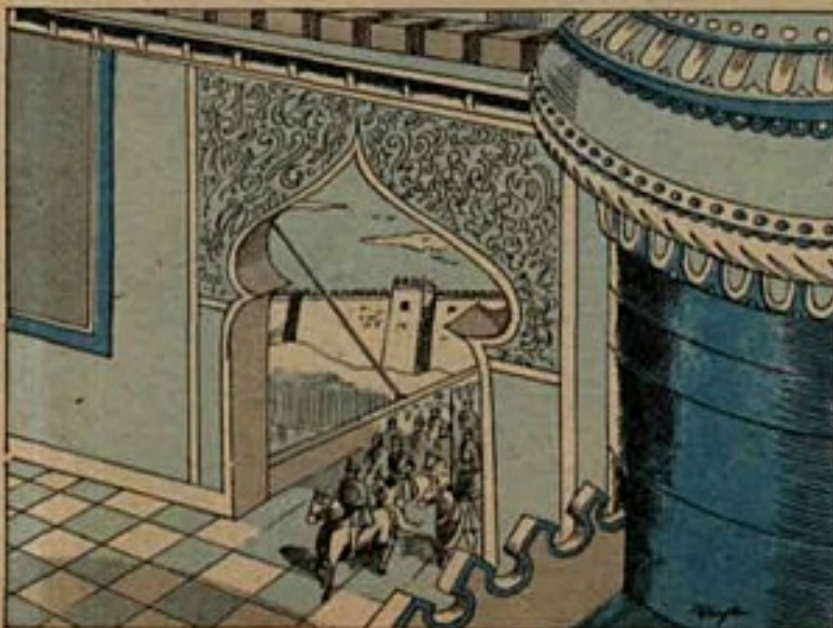
दुर्ग जब मुगलों के अधीन में आ गया, तब याकूब उनके हाथ न लगा। उसने शपथ की थी कि अपने बदन में प्राण के होते वह दुर्ग की रक्षा करेगा। जब उसे मालूम हुआ कि काम असंभव है, तब उसने अपने प्राण ले लिये। मुगलों ने अधिकारियों को घूस देकर दुर्ग पर अधिकार कर लिया; लेकिन दुर्ग में कई वर्षों के लिए आवश्यक खाद्य-सामग्री भरी पड़ी थी।

कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता

कहानी का सुंदर शीर्षक देकर रु. २५ जीतिए !

?

श्रीगिरि गाँव के सारे निवासी किसान ही थे। औरतें और मर्द समान रूप से मेहनत किया करते थे। लेकिन जग्गो की पत्नी दुर्गा में अंध विश्वासों की मात्रा ज्यादा थी। उसका विश्वास था कि मंत्र-तंत्र और तावीजों के द्वारा धनार्जन किया जा सकता है। श्रम की अपेक्षा इनके द्वारा ज्यादा फल मिल सकता है, आदि। इस कारण वह सदा मंदिरों में जाती, साधू-सन्यासियों की सेवा करते घर और खेत के काम की उपेक्षा करने लगी।

अंत में वह एक ढेला ले आई, उसकी पूजा करके उसे कुठले में रखते हुए अपने पति से बोली—"यह तो अनाज का एक ढेला है, इसे मुझे एक साधू ने कृपा करके दिया है, इसके द्वारा सारे कुठले धान से भर जायेंगे।"

इसका परिणाम यह हुआ कि दूसरे दिन जग्गो दुपहर तक सोता रहा। दुर्गा ने उसे जगाकर समझाया—"अजी, सुनो, दुपहर होने को है। अभी तक तुम खेत में क्यों नहीं गये?"

"अरी, कुठले में धान का ढेला जो है, उसी से कुठले सब भर जायेंगे। मुझे कड़ी मेहनत करके हड्डी-पसली तोड़ने की क्या जरूरत है?" जग्गो ने जवाब दिया।

यह उत्तर सुनने पर दुर्गा की आँखें खुल गईं। कुठले से धान का ढेला हटाया गया। उस दिन से दुर्गा भी लाचार होकर अपने पति के साथ मेहनत करने लगी।

★ ★ ★

उपर्युक्त कहानी के लिए सोच-समझ कर एक कार्ड पर उत्तम शीर्षक लिखकर "कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता" चन्दामामा, २ & ३, अर्काट रोड, वड़पलनी, मद्रास-६०००२६ के नाम भेज दीजिए। लिफ़ाफ़ों में प्राप्त उत्तरों पर विचार नहीं किया जाएगा।

कार्ड हमें फ़रवरी १० तक प्राप्त हों और उसमें फोटो-परिचयोक्तियाँ न हों। इसके परिणाम चन्दामामा के अप्रैल '७८ के अंक में घोषित किये जायेंगे।

दिसंबर मास की प्रतियोगिता का परिणाम: "तुम सा नहीं देखा"

पुरस्कृत व्यक्ति: बाबूलाल खटीक, द्वारा: कमल वाइन स्टोर, सूरज पोल बाहर, उदयपुर

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियां अप्रैल १९७८ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।
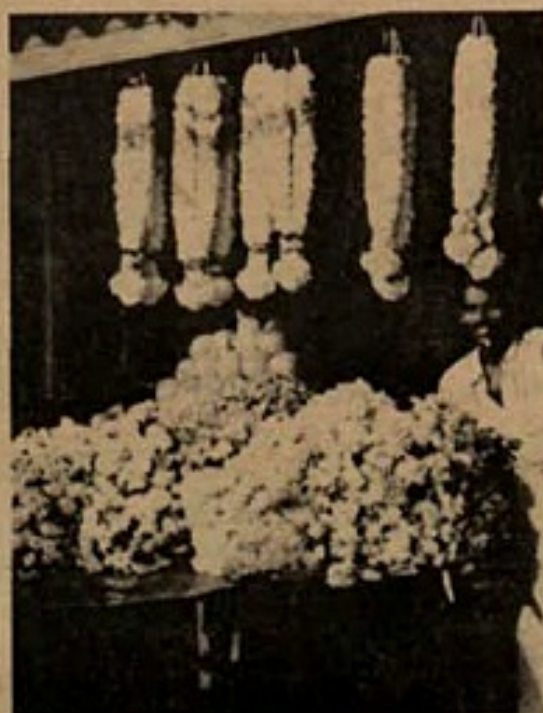
P. V. Subramanyam

★

S. G. Seshagiry

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियां दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ फ़रवरी १० तक परिचयोक्तियां प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियां कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

दिसंबर के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो : एक का चालक अल्लाह!

द्वितीय फोटो : एक का चालक मल्लाह!!

प्रेषक: अमरसिंह, सी. एस. आई. आर. कम्पलैक्स, लाइब्रेरी रोड, पूसा ,नई दिल्ली

पुरस्कार की रु. २५राशि इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

हमें तो
प्यारा लगता है
चन्दामामा
आप को भी प्यारा लगेगा
चन्दामामा को हरेक पुरुष, हरेक स्त्री और हरेक बच्चा
पढ़ता है। अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, गुजराती,
मलयालम, बंगला, उड़िया, पंजाबी और असामी इन बारह
भाषाओं में प्रकाशित बच्चों के इस मासिक पत्र में अत्यंत
रोचक, और आश्चर्य भरी कहानियाँ रहती हैं;
जो हर दिन में एक उत्साह, एक उमंग भर देती है।
चन्दामामा बालकों का अपना मासिक पत्र जिससे बड़े बनते
नौजवान और नौजवान बनते बड़ों जैसे बुद्धिमान!
वार्षिक शुल्क के लिए सम्पर्क करें : डौल्टन एजेंसीज़, चन्दामामा बिल्डिंग मद्रास- ६०००२६

फलों के स्वादवाली गोलियां

५ फलों के स्वाद — रासबेरी, अनन्नास, नींबू, नारंगी व मोसंबी.

everest/871/PP-hn